वेदान्त रत्नावली

लेखकः—

श्री स्वामी भोलेबाबा जी महाराज

वेदान्त रत्नावली

का

भाग दूसरा, तीसरा,

और चौथा

छप रहे हैं।

मिलने का पता—

चन्द्रभानु शर्मा

संचालक

विश्वनाथ प्रकाशन मण्डल

ढुण्ढीराज गणेश

बनारस।

वेदान्त रत्नावली

पहिला भाग
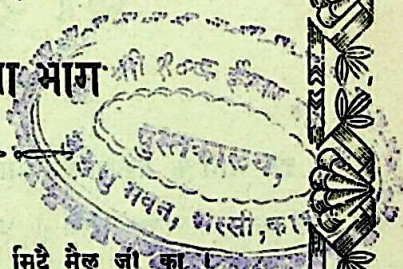
सुखी शान्त होवो मिटे मैल जी का।
कहीं भी नहीं चिन्ह पावे दुई का॥
जहां देखिये दर्श हो ईश ही का।
करो पाठ वेदान्त रत्नावली का॥

भोला

प्रकाशकः—पं० चन्द्रभानु शर्मा,
संचालक—"विश्वनाथ" तथा काशी विश्वनाथ प्रेस।

प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य ।)॥

दो शब्द

इस भाग के प्रकाशन में भाई जेठानन्द मालिक तुलसीदास एण्ड सन्स कलकत्ता वालों ने आर्थिक सहायता दी है, परन्तु इसी के आगे के तीन भाग, वाराह उपनिषद तथा अभी तक के अप्रकाशित दूसरे ग्रन्थों के प्रकाशन का भार पं० चन्द्रभानु जी शर्मा मालिक "विश्वनाथ प्रकाशन मंडल" संचालक "विश्वनाथ" तथा "काशी विश्वनाथ प्रेस" ने अपने ऊपर लिया है और मैंने उन्हें इस कार्य का सम्पूर्ण अधिकार भी दिया है। इसलिये प्रकाशक के स्थान पर पं० चन्द्रभानु शर्मा का नाम है। मुझे पूर्ण आशा व विश्वास है कि वेदान्त साहित्य तथा सिद्धान्तों के प्रचार के प्रति अभिरुचि रखने वाले सज्जन पं० चन्द्रभानु जी शर्मा को यथा शक्ति सहयोग व सहायता प्रदान करेंगे—,

सकलचरनानुचर—

भोला

ॐ
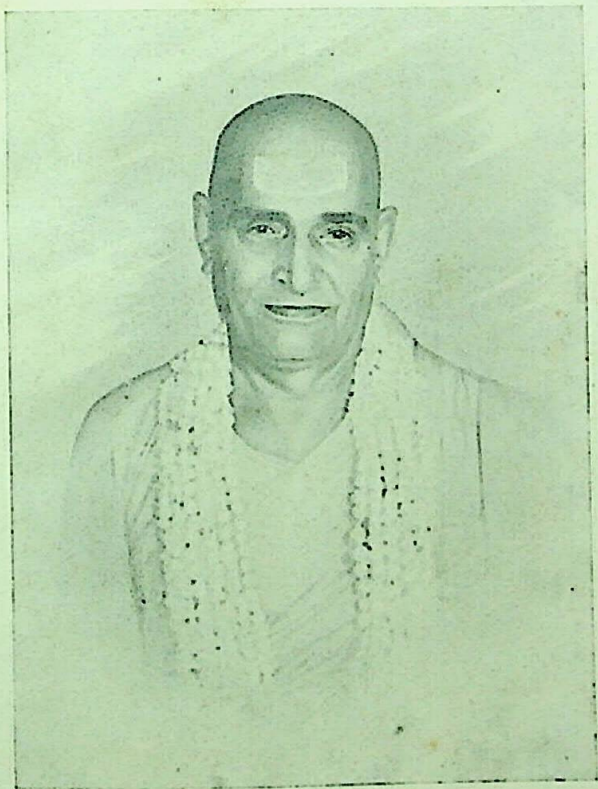
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परमहंसः
श्री १०८ स्वामी विद्यानन्द सरस्वती
(भोलेबाबाजी महाराज)

❁ ॐ तत्सत् ❁

श्रीमत्परमहंस ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री भोलेबाबा जी का

जीवन चरित्र

आपका शुभ जन्म माघ मास सम्वत् १९२९ विक्रमी सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ। आपके पिता का नाम पंडित, ख्याली राम कौशल्य और माताजी का नाम श्री लक्ष्मी देवी था आपका राशि का शुभ नाम डौरूशंकर और पिता माताजी का रक्खा हुआ नाम पं० शंकरलाल कौशल्य है। जन्मभूमि ताजगंज मुहल्ला पाकटोला आगरा है। आपके वंश में परंपरा से पुरोहिताई का कर्म होता था, उस कर्म को निन्दित समझकर आपके पिता माता जीने आपको अंग्रेजी विद्या की शिक्षा दी, यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् आपने ब्रह्मचर्य धर्म का अच्छी प्रकार पालन किया। बारह वर्ष तक लवण अन्नादि भोजन का त्याग किया, केवल फलाहार ही करते रहे। पूर्वजन्म के प्रबल संस्कार के बल से आपका

प्रेम देव भाषा में अधिक होने के कारण विद्वान् पंडितों द्वारा संस्कृत विद्या का आपने अच्छी प्रकार अभ्यास किया। श्रुति भगवती माता की कृपा से आप अल्पकाल में ही सर्वविद्या सम्पन्न हो गये योगाङ्ग तथा अन्य ज्ञान सिद्धि के साधन तो आपको स्वभाव से ही सिद्ध थे, आरम्भ से ही आपको पूजा-पाठ, ईश्वर भजन में अधिक प्रेम था। संन्यासी साधुओं को देखकर आप बहुत ही प्रसन्न होते थे। जहां कोई संन्यासी महात्मा मिल जाता था, उसको घर पर लाकर भक्तिपूर्वक भोजन कराते थे और भगवत् सम्बन्धी प्रश्न पूछते थे। कोई बीस वर्ष की उमर में आप रेलवे में तार बाबू और चार पांच वर्ष पीछे स्टेशन मास्टर हो गए। कोई बीस वर्ष तक आपने स्टेशन मास्टरी की। स्टेशन मास्टरी के काल में जिस स्टेशन पर आप रहते थे, वहां पर भगवत् कीर्तन, भजन रामायण आदि का पठन पाठन और अतिथि सेवा किया करते थे। देशकाल के अनुसार पात्रों और दीनों को अन्न वस्त्रादि श्रद्धापूर्वक देते रहते थे, कोई योग्य याचक आपके यहाँ से हताश नहीं होता था। सबकी आशापूर्ण होती थी, सभी सन्तुष्ट होकर जयजयकार धुनी करते थे, आपकी उदारता और त्याग का पूरा पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। पूरा पूरा हाल लिखा जावे तो एक नया ग्रन्थ बन जावेगा। ज्ञान वैराग्य की आप मूर्ति हैं। वेदान्त शास्त्रों का आप अच्छी प्रकार अवलोकन किया करते थे।

दैवयोग से सन् १९१० ई० में श्री ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामी योगानन्दजी महाराज की कृपा द्वारा आपको आत्मसाक्षात् हो गया। पीछे सन् १९१७ ई० में आपने स्टेशन मास्टरी से इस्तेफा दे दिया और छः वर्ष तक वेदान्त केसरी मासिक पत्र संचालन किया और ग्रहस्थ धर्म का भी आपने यथाविधि पालन किया। तत्पश्चात् सर्वकर्मों को समाप्त करते हुए तीनों ऋणों से उरिण और तीनों ईषणाओं को त्यागकर चतुर्थ आश्रम धारण किया। आपका योगपट श्री विद्यानन्द सरस्वतीजी है।

आपने ब्रह्मसूत्र उपनिषद् विष्णु सहस्र नाम आदि की टीका की है। परमहंस विवेक माला, श्रुति की टेर, वेदान्त छन्दावली दो भाग, कौशल्य, गीतावली दो भाग आदि आपके स्वतंत्र ग्रन्थ हैं और भी आपकी बनाई गुरुगीता वेदान्तस्तोत्रसंग्रह आदि हैं विश्वनाथ, कल्याण अच्युत ग्रन्थमाला भक्ति आदि मासिक पत्रों में भी आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं यह सब जनता को विदित है। आपने वेदान्त का छन्दों द्वारा सरल भाषा में यथार्थ अर्थ रोचक शब्दों में प्रकाशित किया है। जो कोई जिज्ञासु आपके रचितग्रंथों को पढ़ता है, तो उसका मन ऐसा लग जाता है कि छोड़ना नहीं चाहता और ईश्वर भजन में लग जाता है और धीरे धीरे अपना कल्याण कर लेता है, इसमें जरा भी संशय नहीं! आपका जन्म केवल लोकहितार्थ ही हुआ है। आप वर्ण-आश्रमादि

का अभिमान त्याग कर जीवन्मुक्ति का आमन्द ले रहे हैं। लोक-हितार्थ ही आपकी सब क्रिया स्वाभाविक निराभिमान होती हैं।

पर उपकार वचन मन काया।
सन्त स्वभाव सहज खगराया॥
सन्त सहैं दुख परहित लागी।
पर दुख हेतु असन्त अभागी॥

आपका जीवन सभी दृष्टियों से आदर्श और सफल है। आपको निरंतर लोक कल्याण एवं हित की ही चिन्ता रहती है।

आप कृत-कृत्य हैं, लोकदृष्टि से कर्ता प्रतीत होते हैं, वस्तुतः आप अकर्ता हैं। आपके प्रवचन विना अनध्याय नित्य होता है। आपके समझाने की शैली इतनी सरल और मधुर है कि मन्द जिज्ञासु भी सहज में समझ जाता है। आपकी कविताओं से जीवन्मुक्त पद की प्राप्ति हो सकती है। समस्त उपानिषदों का सार सरल भाषा में लिखा है। वह बड़ा ही रोचक और साथ ही रहस्य पूर्ण है। जिज्ञासु को पठन मात्र से ज्ञान की प्राप्ति होती है। आप स्वयं जीवन्मुक्त ही नहीं किन्तु विदेहमुक्त भी हैं। जीवनमुक्त ही विदेह मुक्त होते हैं।

यस्य ना हँकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
कुर्वताऽकुर्वतावापि जीवन्मुक्त स उच्यते॥

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था,
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।
अपार सम्वित् सुखसागरेऽस्मिन,
लीन परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ।

शिव शंकर महादेव भोला वही है । नित्यानन्द पूर्णब्रह्म केवल यही है । आपका जीवन और कृतियां भी दिव्य हैं । इति शुभम् ॐ तत्सत् ३ ॥

स्वामी नित्यानन्द सरस्वती—

प्रस्तावना

मच्चित्ता मद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ गीता १०।९
तेषां संततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ गीता १०।१०

इस भगवान् के वचनानुसार जो भाग्यवान् अधिकारी नित्य ब्रह्माभ्यास करते हैं, इनको श्रीभगवान् ज्ञानयोग देते हैं, जिससे वे परब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं। यह ब्रह्माभ्यास भी अपनी मातृभाषा में समझ कर यदि किया जाता है, तो मन तुरन्त ही प्रसन्न होकर शान्त हो जाता है। शान्त मन में ही प्राप्त हुआ ज्ञान दृढ़ होता है, प्राप्त हुए ज्ञान के दृढ़ करने के लिये उस सकल चराचरानुचर ने पद्य में कौशल्य गीतावली २ भाग, श्रुति की टेर, वेदान्त छन्दावली २ भाग रचे हैं। इनका अध्ययन करने से स्वाभाविक ही मन ब्रह्माकार हो जाता है, इसका मैंने स्वयं अनुभव किया है और अन्य कई मुमुक्षुओं के मुख से भी सुना है। दूसरों के चित्त के विचारों का अनुमान अपने चित्त से किया जाता है जब मेरा चित्त ब्रह्म में लीन हो जाता है, तो औरों का चित्त भी

अवश्य ही ब्रह्म में लीन होकर तदाकार हो जाता होगा, ऐसा अनुमान होता है। यह तो मैंने अपनी आंखों से देखा है कि जो कोई इन ग्रन्थों को पढ़ता है, वह तन मन सब की सुधि भूल जाता है। कई मुमुक्षु इन ग्रन्थों में से एक का अथवा सब का थोड़ा बहुत नित्य पाठ किया करते हैं।

उपरोक्त सब कवितायें छप चुकी थीं, विश्वनाथ में आयी हुई कवितायें अभी तक नहीं छपी थीं, उनके प्रकाशित करने के लिये मैं विचार कर रहा था कि यह भी प्रकाशित हो जांय तो सबका लाभ हो। विश्वनाथ के संचालक आदि भी इसी विचार में थे, परन्तु कागज आदि मँहगा होने से वे हाल में उनके छापने में असमर्थ थे। ईश्वर को जो करना होता है, वह शीघ्र ही हो जाता है। ईश्वर की प्रेरणा से ज्येठानन्द तुलसीदास, तुलसीदास एण्ड सन्स नामक फर्म के मालिक ने स्वयं ही मुझसे कहा कि हमारे दामों से विश्वनाथ में आयी हुई कविताओं को वेदान्त रत्नावली नाम से प्रकाशित करा लो। उनके कथनानुसार एक हजार प्रतियां वेदान्त रत्नावली की बिना मूल्य वितीर्ण करने को छपवाई जाती हैं। मुमुक्षु उनसे लाभ उठावेंगे, शान्ति प्राप्त करेंगे, ऐसी आशा है। यानि साधक ज्ञान प्राप्त करेंगे और ज्ञानी प्राप्त हुए ज्ञान को दृढ़ करेंगे। इति शम्

प्रस्तावक—
सकलचराचरानुचर भोला

॥ ॐ तत्सत् ॥

वेदान्त रत्नावली

मङ्गलाचरणम्

न सुखाय सुखं यस्य दुःखं दुःखाय यस्य नो ।
अन्तर्मुखी मतिर्यस्य तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥
यस्य न स्फुरति प्रज्ञा चिद्व्योमन्यचलस्थितेः ।
प्रसृतेष्विव भोगेषु तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥
चिन्मात्रात्मनि विश्रान्तं यस्य चित्तमचञ्चलम् ।
तत्रैव रतिमायान्तं तं गुरुं प्रणतोस्म्यहम् ॥ ३ ॥
परमात्मनि विश्रान्तं यस्य व्यावृत्य नो मनः ।
रमतेऽस्मिन्पुनर्दृश्ये तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥
चिद्व्योमैकान्त निष्ठत्वात्प्रयत्नेन विना सुखम् ।
न वेत्ति शुद्ध बोधात्मा तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
सर्वं एव परिक्षीणाः सन्देहा यस्य वस्तुतः ।
सर्वार्थेषु विवेकेन तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥
यस्य कस्मिंश्चिदप्यर्थे क्वचिद्रसिकतास्तिनो ।
व्यवहारवतोप्यन्तः तं गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥

हरि भक्ति कैसे पा सके ?

(१)

धन के कमाने में सदा ही, मूढ़ जो आसक्त है।
धन का वढ़ाना जोड़ना ही, मात्र जिसका लक्ष्य है ॥
धन देखकर है जीवता, ना, पीसके ना खा सके।
धन ईश है जिस मूढ़ का, हरि भक्त कैसे पा सके ? ॥

(२)

धन को कमाना चाहता, तन को फुलाना चाहता।
वच्चे बनाना चाहता, कुल का बढ़ाना चाहता ॥
अच्छे लगे हैं भोग, नाहीं, द्रव्य मूढ़ कमा सके।
आलस्य का है दास, सो, हरि भक्त कैसे पा सके ? ॥

(३)

प्यारा जिसे धन धाम है, प्यारी जिसे दारा लगे।
प्यारी जिसे वेटी लगे, प्यारा जिसे बेटा लगे ॥
परिवार का संसर्ग जो नर, छोड़ क्षण भर ना सके।
सत्संग में ना जा सके, हरि भक्ति कैसे पा सके ? ॥

(४)

संसार सब निस्सार है, ईश्वर भजन ही सार है।
करता निरन्तर जो भजन, सो होय भव से पार है ॥
सत् शास्त्र सज्जन कह रहे, विश्वास नांहीं ला सके।
भवमुक्त कैसे होय सो, हरि भक्ति कैसे पा सके ? ॥

(५)

गाढ़ा भजन जब होय है, सब भूल जापक जाय है।
जाड़ा लगे ना धूप ना, आनन्द अद्भुत आय है।।
वश पाप के नरमूढ़ को, श्रद्धा न इस पर आसके।
श्रद्धा नहीं जिस मूढ़ को, हरि भक्ति कैसे पा सके ?।।

(६)

शिव नाम का हरि नाम का, माहात्म्य ऋषि मुनि गा रहे।
अघ क्षीण होते जापसे, घंटा बजा चिल्ला रहे।।
आलस्य से या मोह से, जो नाम भी जप ना सके।
हों पाप कैसे क्षीण फिर, हरि भक्ति कैसे पा सके ?।।

(७)

इन्द्रादि जो नर पूजता है, स्वर्ग में सो जाय है।
जब पुण्य होता क्षीण है, तहँ से गिराया जाय है।।
चढ़ता रहे, गिरता रहे, तज कर्म फिर भी ना सके।
न विरक्त होवे भोग से, हरि भक्ति कैसे पा सके ?।।

(८)

संसार में सुख मानता है, देह सच्चा जानता।
है देह आत्मा अन्य ना, जो मूढ़ ऐसा मानता।।
बाहर जगत् है देखता, भीतर न मन ले जा सके।
मतिमन्द पामर मूढ़ सो, हरि भक्ति कैसे पा सके ?।।

(९)

बाहर नहीं है सुख कहीं, सुख सिंधु अपना आप है।
सुख शान्ति वाहर ढूंढना, है भल भारी पाप है॥
जड़ बुद्धि होने से न यह, जिसकी समझ में आ सके।
सुनता हुआ भी है वधिर, हरि भक्ति कैसे पा सके ?॥

(१०)

सत्शास्त्र हैं देखे नहीं, सत्संग भी नांहीं किया।
संसार का ही झंझटों में, मूढ़ आयुष खो दिया॥
अति गूढ़ शिव के तत्त्व तक; ना वृत्ति है पहुँचा सके।
भोला ! न हरि तक जाय मन, हरि भक्ति कैसे पा सके ?॥

हमको दुख क्यों होता है ?

(१)

सुख दुःख मन के मांहि हैं, श्रुति सन्त सबही कह रहे।
हम ढूंढते वाहर फिरें, भवमय नदी में बह रहे॥
शिष्टाचरण का अनुकरण, सुख शान्ति का आधार है।
हम दुःख इससे पा रहे, तज दीन्ह शिष्टाचार है॥

(२)

सुख दुःख मादक हैं मृषा, श्रीकृष्ण यह बतलाय है।
आवे चले फिर जांय हैं, नांही ठहर वे पांय है॥
जो धीर सह लेते उन्हें, सुखमय परम पद पांय हैं।
हम दुःख पाते क्योंकि वे, हमसे सहे ना जाँय हैं॥

(३)

ना अन्य कोई दुःख है, विक्षेप मन का दुःख है।
विक्षेप मन में हो न तो, होता न तन का दुःख है॥
विक्षेप लाखों ही हमारे, चित्त में हैं बस रहे।
क्यों ना हमें हो दुःख जिनको, सर्प लाखों डस रहे॥

(४)

लाये न थे कुछ हम यहां, ले भी नहीं कुछ जांयगे।
बसकर यहां पर रात भर, तड़का हुआ उठ जांयगे॥
फिर भी कटें लड़ २ मरें, हैं रात दिन तकरार है।
पाते इसी से दुःख देहाशक्ति का शिर भार है॥

(५)

है दुःख सब अविचार से, निर्मूल होय विचार से।
ना काम लेय विचार से, सब कर्म हों अविचार से॥
जो मींच आंखें दौड़ता, सो खाय क्यों ना ठोकरें।
ज्यों अंध करते कर्म हम, फिर दुःख से कैसे तरें॥

(६)

सुत दार धन परिवार, नाहीं अन्त आते काम हैं।
देते यहां भी दुःख ही, देते नहीं आराम हैं॥
दारादि में आसक्त कोई, सुख नहीं है पा सके।
दारादि में आसक्त हम हैं, दुःख कैसे जा सके॥

(७)

संसार यह निस्सार है, ईश्वर भजन ही सार है।
इसमें नहीं सन्देह कुछ सब जानता संसार है॥
फिर भी सदा ईश्वर विमुख, संसार में आसक्त है।
पावें नहीं हम दुःख क्यों, जब मूढ़ विषयासक्त हैं॥

(८)

सुख है कहां अरु दुःख क्या है, कुछ नहीं हम जानते।
क्या सत्य और असत्य क्या, यह भी नहीं पहिचानते॥
सुख आप अपना तत्त्व है मुख फेर उससे है लिया।
पाते इसीसे दुःख हैं, मन अन्य को है दे दिया॥

(९)

फिरता रिझाता अन्य को, सो मूढ़ सुख ना पाय है।
जो रीझता है आप पर, झट ही सुखी हो जाय है॥
हम आप पर ना रीझते, धनियन रिझावत फिर रहे।
कैसे भला फिर हों सुखी, विपरीत ही जब कर रहे॥

(१०)

भोला! रिझा मत अन्य केवल, आप पर ही रीझ रे।
मत दूसरे पर रीझ नाहीं, दूसरे से खीज रे॥
हास्यादि सब रस त्याग निश्चल, शान्त रस में भीज रे।
होगा कभी ना दुःख मन, भव बीज कर निर्बीज रे॥

अब चित्त मेरा शांत है ?

[१]

ईश्वर कृपा से, गुरु कृपा से, मर्म मैंने पा लिया।
ज्ञानाग्नि में अज्ञान कूड़ा भस्म सब है कर दिया ॥
अब हो गया है स्वस्थ सम्यक् लेश नाहीं भ्रान्त है।
शंका हुई निर्मूल सब अब चित्त मेरा शान्त है ॥

[२]

था अब तलक अति मूढ़ मैं, कुछ भी नहीं था जानता।
सत् था समझता असत् को अरु, असत् को सत् मानता ॥
जलता नहीं है चित्त अब होता कभी ना भ्रान्त है।
सत अरु असत् को जानकर अब चित्त मेरा शान्त है ॥

[३]

समता, क्षमा, मुदिता दया बहिनें सदा सुख देंय हैं।
संतोष अरु वैराग्य दोनों भ्रात भय हर लेंय हैं ॥
है बोध, सम्यक् पुत्र पावन शान्ति सुखदा मात है।
परिवार मम शम आदि हैं अब चित्त मेरा शान्त है ॥

[४]

आनन्दमय भण्डार मेरा पार जिसका है नहीं।
दिन रात करता खर्च, तो भी लेश घटता है नहीं ॥
होता सभी का है प्रलय, इसका न होता अन्त है ॥
यह कोश अद्भुत पाय के, अब चित्त मेरा शान्त है ॥

[५]

सद्‌गुरु बिना संसार का, ना भेद कोई पा सके।
जब तक न पावे भेद तब तक दुःख नांही जा सके॥
सद्‌गुरु बताता भेद है होता तभी दुःखान्त है।
सद्‌गुरु बताया भेद है, अब चित्त मेरा शान्त है॥

[६]

जो कुछ यहां है दीखता, ना ब्रह्मसे कुछ अन्य है।
जैसे कटक है कनक ही, नो कनक से कुछ भिन्न है॥
जब दूसरा है ही नहीं, तो सर्वथा एकान्त है।
एकान्त मुझको मिल गया, अब चित्त मेरा शान्त है॥

[७]

एकत्वमें भी व्यर्थ ही नर मूढ़ भय है खावता।
बेताल लेता कल्प बालक मूढ़ फिर है कांपता।
अद्वैत है, एकत्व है, ना देश है, ना प्रान्त है।
ना काल है ना वस्तु हैं अब चित्त मेरा शान्त है॥

[८]

होता जहां पर दूसरा है भय तहां ही होय है।
जब गाढ़ निद्रा आय है तब भय न खाता कोय है॥
जगता हुआ निद्रालु सा जो शान्त है अरु दान्त है।
दुःखी नहीं सो हो सके, अब चित्त मेरा शान्त है॥

[९]

कर्तव्य था सो कर लिया, करना नहीं कुछ शेष है।
जो जानना था जान लीना, जानना ना लेश है॥
प्राप्तव्य था सो पा लिया, चलना न आगे पंथ है।
यात्रा महा पूरी हुई, अब चित्त मेरा शान्त है॥

[१०]

सत्शास्त्र भोला! पढ़ सदा; सत्संग में जा नित्य रे।
आसक्त मत हो भोग में, कर सूक्ष्म निर्मल चित्त रे॥
मन शुद्ध देता मोक्ष है, यह वेद का सिद्धान्त है।
कर शुद्ध मन, निःशंक कह, अब चित्त मेरा शान्त है॥

दिव्य जीवन—

(१)

दिव का उजाला अर्थ है, दिव भाव है, सो दिव्य है।
सच्चा उजाला ब्रह्म है, जो सर्वदा ही नित्य है॥
जो ब्रह्म है, सो दिव्य है, जो दिव्य है, सो ब्रह्म है।
जो ब्रह्म से देवे मिला, जीवन कहाता दिव्य है॥

(२)

पापी जनों के पाप धो, करदेय जो निष्पाप है।
जिससे मनुज सब जान जाता, अन्य क्या २ आप है॥
कर्ता अकर्ता दे बना, भोक्ता अभोक्ता देय कर।
संसार से देवे छुटा, सो दिव्य जीवन मित्रवर॥

(३)

काया तथा मन वाक्य से करता सदा उपकार है।
नाहीं किसी का स्वप्नमें करता कभी अपकार है॥
सद्ब्रह्म सबमें देखता, करतां सभी से प्यार है।
जीवन उसी का दिव्य है, सीधा सरल व्यवहार है॥

(४)

जग है असत् या सत्य है, नाहीं कभी भी देह सत्।
सुर सिद्ध ऋषि मुनि देव आदिक देह सबका है असत॥
ममता अहंता देह में करते नहीं जे धीर हैं।
जीवन उन्हीं का दिव्य है वे ही नरों में वीर हैं॥

(५)

मिथ्या जगत् भी दुःख देता देखने में आय है।
जब तक न होय विवेक तब तक दुःख नांही जाय है॥
जीता हुआ जो नर विवेकी दुःख सुखसे मुक्त है।
सो दिव्यजीवन जीवता, शम दम दयासे युक्त है॥

(६)

सब इन्द्रियां स्वाधीन हैं, ना भोग में मन जाय है।
सम हानि में सम लाभ में, ना मन विषमता आय है॥
सम मित्र है, सम शत्रु है, हित सर्वका है चाहता।
उस धीरका है दिव्य जीवन, वास्तविक कहलावता॥

(७)

सर्वत्र करता ब्रह्मदर्शन, ना किसी से वैर है।
आनन्द मांही मग्न है, करता जगत् की सैर है॥
ना दीन दुःखी होय है, करता कभी ना मान है।
उस धीरका है दिव्य जीवन, पाय सो निर्वाण है॥

(८)

कामी लहे दुर्गति सदा क्रोधी जलाता चित्त है।
हो जाय लोभी अंध होता दीन दुःखी नित्य है॥
तीनों तजे ईश्वर भजें सुख शान्ति निश्चय पाय है।
यौवन सफल उस धीर का ही दिव्य माना जाय है॥

(९)

तृष्णा सुखाती ना जिसे, चिन्ता जलाती ना जिसे।
आशा रुलाती ना जिसे ईर्ष्या सताती ना जिसे॥
सम शान्त रहता सर्वदा, हलचल न मनमें लाय है।
सो दिव्य जीवन भोगता साम्राज्य अक्षय पाय है॥

(१०)

भोला! कभी मत दीन हो, मत तू किसी की आश कर।
संतुष्ट हो रे! आपमें, प्रारब्ध पर विश्वास कर॥
भज दिव्य जीवन सर्वदा, शम दम दयासे युक्त हो।
विश्वेश की ले ले शरण, भव जेलसे छुट मुक्त हो॥

मर कर कहाँ पर जाय है ?

इसलोक या परलोक हित, जो जो करे नर कर्म है।
शुभ कर्म से शुभ, अशुभ से, पाता अशुभ सो जन्म है॥
जब तक रहे मन वासना, ना कर्म से छुट पाय है।
होती जहां की वासना, मर कर तहां ही जाय है॥

(२)

ज्यों पान आदिक चावने से, रक्तता मुख आय है।
त्यों भूत पांचों के मिले, चैतन्य तन हो जाय है॥
रजवीर्य मिल बनजाय तन, फिर भूमि में मिल जाय है।
ऐसा समझता मूढ़ सो, फिर फिर मरे पछताय है॥

(३)

जो प्रेत भूतन पूजता, सो भूत योनी पाय है।
जो पूजता है पितृयों को, पितृयों में जाय है॥
करता भजन जो देवतों का, देव हो सुख पाय है।
जो ब्रह्मका करता भजन, सो ब्रह्म ही हो जाय है॥

(४)

शिवका करे पूजन भजन, शिवलोक में वह जाय है।
जो ध्यान नित शिवका धरे, सायुज्य शिवका पाय है॥
जो विष्णु का पूजन करे, सो विष्णु पार्षद होय है।
जो ध्यान धरता विष्णु का, सो विष्णु साक्षात् होय है॥

(५)

संसार से मुख मोड़कर, जो ब्रह्म केवल ध्याय है।
करता उसीका चिन्तवन, निशिदिन उसे ही गाय है।
मनमें न जिसके स्वप्न में भी अन्य आने पाय है।
सो ब्रह्म ही हो जाय है, ना जाय है, ना आय है॥

(६)

आशा जगत की छोड़कर, जो आप में ही मग्न है।
सब वृत्तियां हैं शान्त जिसकी, आपमें संलग्न है॥
ना एक क्षण भी वृत्ति जिसकी, ब्रह्म से हट पाय है।
सो तो सदा ही है अमर, ना जाय है ना आय है॥

(७)

संतुष्ट अपने आप में, संतृप्त अपने आप में।
मन बुद्धि अपने आपमें, है चित्त अपने आप में॥
अभिमान जिसका गल गलाकर आपमें रल जाय है।
परिपूर्ण है सर्वत्र सो, ना जाय है, ना आय है॥

(८)

ना द्वेष करता भोग से, ना राग रखता योग में।
हँसता नहीं है स्वास्थ्य में, रोता नहीं है रोग में॥
इच्छा न जीने की जिसे, ना मृत्यु से घबराय है।
सम शान्त जीवन्मुक्त सो, ना जाय है, ना आय है॥

(९)

मिथ्या जगत् है ब्रह्म सत्, सो ब्रह्म मेरा तत्त्व है।
मेरे सिवा जो भासता, निस्सार सो निस्तत्त्व है॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, ना मृत्यु उसको खाय है।
सशरीर भी अशरीर है, ना जाय है, ना आय है॥

(१०)

भोला ! कभी मत भूल, छोटी वस्तु आवे जाय है।
जो पूर्ण है सो है अचल, जावे नहीं, ना आय है॥
नरधीर भजता पूर्ण अव्यय, पूर्ण सो हो जाय है।
नर मूढ़ भजता अल्प सो, विनु मृत्यु मर मर जाय है॥

अज्ञान की महा महिमा—

मांसादि की नारी बनी, नर भी उन्हीं का है बना।
चैतन्य दोनों मांहि सम है, भेद है तब लेश ना॥
तो भी परस्पर मोह वश आसक्त ऐसे होंय हैं।
यदि दैव वश जावें बिछुड़, तो प्राण तक भी खोय हैं॥

(२)

धन हेतु कोई रो रहा, सुत हेतु कोई रो रहा।
दारा विना कोई यहां मुख आंसुओं से धो रहा॥
रोता हुआ है जन्मता रोता रहे है जन्म भर।
रोता हुआ मर जाय है, धन धाम तज मुख फाड़कर॥

(३)

धन धर्म करने हेतु है या भोग करने के लिये।
ना पृथिवी में खोद गड्ढा गाढ़ धरने के लिये॥
देता नहीं अधिकारियों को आप भी ना खाय है।
रक्षा करन मरकर यहां, फिर सर्प बनकर आय है॥

(४)

यह देह है, तो धन कमाना, क्या बड़ी कुछ बात है।
धन भी न हो तो, अन्नदाता ईश हरदम साथ है॥
तो भी रहे नर मूढ़ रोता रात दिन धनके लिये।
तज धर्म देता पुत्र दारा प्राण तक धनके लिये॥

(५)

राजा महाराजा बहुत से भूप बनकर चल दिये।
पृथिवी यहां की है यहां ही रो रही उनके लिये॥
दिन रात प्राणी मर रहे हैं देखता सुनता रहे।
धिक्कार है उस मूढ़ को, फिर भी जगत् सच्चा कहे॥

(६)

है ब्रह्म सत् मिथ्या जगत, श्रुति भगवती चिल्ला रही।
देही अनश्वर देह नश्वर गीत गीता गा रही॥
वो भी भजे है देह नर देहेश भजता है नहीं।
आसक्ति धनकी धामकी, सुत दारकी तजता नहीं॥

(७)

सच्चा न मिथ्या हो सके, मिथ्या न सच्चा हो सके।
साक्षी सदा सत् असतका किस भांति मिथ्या हो सके॥
सो सत्य नांही दीखता, मिथ्या कभी जो होय ना।
मिथ्या जगत है दीखता, जो कल्ल था है आज ना॥

(८)

इस नामने अरु रूपने, सद्ब्रह्म ऐसा ढक दिया।
जिससे हुए हैं जीव सच्चे ब्रह्म मिथ्या है किया॥
सद्ब्रह्म के अज्ञान से, यह भासती है भिन्नता।
जब तक रहेगी भिन्नता, नांही मिटेगी खिन्नता॥

(९)

मिथ्या जगत् कहते बहुत, चिन्ता नहीं पर छोड़ते।
जिससे बढ़े चिन्ता अधिक, करने उसे ही दौड़ते॥
श्रुति युक्ति अनुभव सिद्ध हैं, बाहर नहीं है सुख कहीं।
बाहर फिरें सुख ढूंढते, मन स्वस्थ नर करते नहीं॥

(१०)

अज्ञान की महिमा महा यह, पार इसका है नहीं।
भोला! सदा कहता रहे, नर अन्त आवेगा कहीं॥
अज्ञान का शिर काट दे, जो ज्ञानकी तलवार से।
होता तुरत ही है सुखी, छुट जाय है संसार से॥

भजले रमापति राम रे—

नर देह हड्डी मांस का, कच्चे घड़े सम तुच्छ है।
फिर भी दिलाता मोक्ष पद, जो स्वच्छ से भी स्वच्छ है॥
दुर्लभ्य पाकर देह यह, हो मित्र! आत्माराम रे।
मत भोग में आसक्त हो, भजले रमापति राम रे॥

[२]

शव्दादि पांचों सर्प हैं, वहु जन्म तक हैं मारते।
जो मूढ इनके होंय वश, वहु वार हैं वे हारते॥
दे क्रोध तज, तज लोभ दे, दे त्याग विपधर कामरे।
अभिमान तज दे देह का, भजले रमापति राम रे॥

[३]

संसार के जो भोग हैं, सव योनियों में प्राप्त हैं।
आहार मैथुन नींद भय श्वानादि में भी व्याप्त हैं॥
शूकर वने कूकर वने, ऐसा मती कर काम रे।
आशा सभी की छोड़ दे भज ले रमापति राम रे॥

[४]

खाना पहिनना कृष्ण हित कर, कृष्णहित दे दान रे।
फल चाह फांसी डालकर अपनी फँसा मत जान रे॥
निर्द्वन्द्व रह निःशंक रह, निर्भय तथा निष्काम रे।
संसार से मुख मोड़कर, भजले रमापति राम रे॥

[५]

धन दारमें आसक्त नर, सुखसे कभी ना सोय है।
लेते जहां ही जन्म तहं माथा धुने हैं रोय हैं॥
रामानुरागी धीर नर पाते परम विश्राम रे।
आशा सभी ही त्याग दे भज ले रमापति राम रे।

[६]

सबके हृदय में रम रहा है राम सबके पास है।
ना देख सक्ता मूढ जो, माया मरी का दास है॥
मैं कौन हूँ ना जानना, माया इसी का नाम रे।
पहिचान अपने आपको भजले रमापति राम रे॥

[७]

तू देह तीनों जानता है देह तीनों है नहीं।
तीनों अवस्थायें नहीं हैं जीव तीनों हैं नहीं॥
अज्ञान नांही वायु ना, ना रक्त तू ना चाम रे।
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं, भज ले रमापति राम रे॥

[८]

जो हो चुका सो राम है, जो होयगा सों राम है।
जो हो रहा सो राम है, जो ना हुआ सो राम है॥
सब राम सबमें राम सबका रामही सुख धाम रे।
कर दर्श सबमें रामका; भज ले रमापति राम रे॥

[९]

सुन रे सदा ही राम तू, गा रे सदा ही राम रे।
जपकर निरन्तर, राम का, ध्या रे सदा ही राम रे॥
चलते खड़े बैठे हुए, भज नित्य सीताराम रे।
दे छोड़ सब व्यापार तू भज ले रमापति राम रे॥

[१०]

ज्यों पल घड़ी घंटा पहर दिन नाम हैं सब काल के।
रवि, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु शंकर नाम दशरथलाल के॥
हैं नाम का ही भेद जो हैं धूप सो ही घाम रे।
तज भेद भोला! दूरसे, भजले रमापति राम रे॥

पादपों से उपदेश—

हे पादपो! यद्यपि सभी यह, विश्व शिव अवतार है।
शिवने बनाकर विश्व यह, हम पर किया उपकार है॥
उपकारियों के मध्यमें, तुमको किया सरदार है।
जो धीर समझे गुण तुम्हारे होय भवसे पार है॥

(२)

सम काय-ग्रीवा शीश योगी, प्राण जैसे रोक कर।
इस लोककी परलोककी, कुछ भी नहीं रखता खबर॥
त्योंही खड़े सीधे सरल, हिलते न डुलते तुम तनक।
बजता कुल्हाड़ा भनक ना, पहुँचे तुम्हारे कान तक॥

(३)

जैसे तपस्वी सिद्धि-हित, दो पैरसे रहता खड़ा।
हिम ताप-वर्षा झेलकर, करता निरन्तर तप कड़ा॥
त्यों शान्त जंगलमें खड़े, हिम आदि तुम हो सह रहे।
जो कुछ मिले तप से मिले मानों सबोंसे कह रहे॥

(४)

ज्यों शान्त समदर्शी महात्मा, द्वन्द्व सहते सर्वदा।
करते नहीं हैं क्रोध सबका, चाहते मंगल सदा।
त्यों ईंट पत्थर खाय भी, होते नहीं तुम खिन्न मन॥
जो ईंट मारे हैं उसे भी, देय फल करते नमन॥

(५)

ज्ञानी अमानी सन्त ज्यों, संलग्न रहते आत्म में।
सन्तुष्ट रहते आत्ममें, संतृप्त रहते आत्म में॥
हो मग्न अपने आपमें, तुम भी मुझे यह भासता।
सम्बन्ध ना रखते किसीसे, ना किसी से वासता॥

(६)

दानी गृहीके आय घर, ज्यों अतिथि पूजा जाय है।
आवे तुम्हारी जो शरण, सन्मान सब विधि पाय है॥
पंखा हिलाके नींद मीठी, तुम सुलाते हो उसे।
फल-फूल आदिक अर्पकर, चंगा बनाते हो उसे॥

(७)

ज्यों सिद्ध पूरा एक-क्षण, आसन न अपना त्यागता।
मुख मोड़कर संसारसे, ईश्वर-भजन-में लागता॥
आते न जाते तुम कहीं भी, सिद्ध योगी की तरह।
दर दर नहीं हो भटकते, नर मूढ़ भोगीकी तरह॥

(८)

जब देखता हूं मैं तुम्हें, होता मुझे आह्लाद है।
नादानुरागी को यथा, आनन्द देता नाद है॥
यदि सार-ग्राही गुण तुम्हारे, एक दो भी धार ले।
इस जन्ममें ही मुक्त हो, ना जन्म फिर दो चार ले॥

(९)

तत्वज्ञ कहते हैं कि ये सब, वृक्ष हैं अज्ञान में।
मेरी समझसे मग्न हो तुम, नित्यही शिव ध्यान में॥
जिस कर्म वश तुम हो खड़े, सुनसान इस मैदान में।
सो कौन सा है कर्म कह दो, मित्र! मेरे कान में॥

(१०)

भोला! धनी हम पूर्वमें; ऐश्वर्य मदसे चूर थे।
शिवसे विमुख, कपटी, कृपण; शम दम दया से दूर थे॥
निज पाप वश सुनसान वनमें; दुःख दारुण सह रहे।
मद मान तज, ईश्वर भजो; सबसे सदा ही कह रहे॥

जीता वही है जागता—

संसार मिथ्या मानता है, ब्रह्म सच्चा जानता।
देखे सभी समझे सभी, करता सभी करवावता॥
जल में रहे जैसे कमल, कोई जिसे ना खींचता।
ज्ञानी वही योगी वही, जीता वही है जागता॥

(२)

नांही किसी से द्वेष है, नांही किसी में राग है।
संतृप्त अपने आप में है, आप में अनुराग है॥
नांही किसी से वासता, या सर्वस है वासता।
शूरा वही, पूरा वही, जीता वही है जागता॥

(३)

कोई फसा है भोग में, कोई लगा है योग में।
नांही लगे है योग में, नांहीं फसे है भोग में॥
रहता सदा ही मौन, सबसे बोलता है चालता।
निश्चिन्त्य आतमा राम है, जीता वही है जागता॥

(४)

कोई भजे है भिन्नता, कोई भजे है शून्यता।
कोई भजे है अल्पता, कोई भजे सर्वज्ञता॥
कुछ भी नहीं करता ग्रहण, कुछ भी नहीं है त्यागता।
निर्द्वन्द्व, नित ही स्वस्थ है, जीता वही है जागता॥

(५)

दूजा नहीं सुनता कभी, दूजा कहीं ना देखता।
दूजा कभी छूता नहीं, दूजा कहीं ना सूंघता ॥
दूजा कभी चक्खे नहीं, दूजा कहीं ना मानता।
दूजा नहीं है जानता, जीता वही है जागता ॥

(६)

जो एक ही सुनता सदा है, एक ही है देखता।
जो एक ही छूता सदा है, एक ही है सूंघता ॥
जो एक ही चक्खे सदा है, एक ही है मानता।
जानत सदा है एक ही, जीता वही है जागता ॥

(७)

जो आप ही सुनता सदा है आप ही है देखता।
छूता सदा ही आप को जो आप ही को सूंघता ॥
चक्खे सदा जो आप ही को आप ही को मानता।
जानत सदा जो आपको जीता वही है जागता ॥

(८)

एकत्व में संमग्न है, पूर्णत्व में तल्लीन है।
निर्दोष सम चित एक रस, शिव सर्व संशय हीन है ॥
अल्पज्ञता, सर्वज्ञता, विक्षिप्तता, एकाग्रता।
कोई न जिसमें धर्म है, जीता वही है जागता ॥

(९)

निष्कम्प जसे वृक्ष, जैसे सिन्धु जो गंभीर है।
ज्यों कृष्ण लोला मात्र करता; राम सम रणधीर है॥
कर्तृत्व ना भोक्तृत्व ना, जिसमें नहीं त्रैगुण्यता।
जो युक्त है सो मुक्त है, जीता वही है जागता॥

(१०)

दे त्याग भोला! विषमता, भज रे सदा ही साम्यता।
विश्वेश के हो जा शरण, तज मूर्खता चातुर्यता॥
इस देह का अभिमान अव्यय, आत्म को है बांधता।
दे त्याग देहाध्यास जो, जीता वही है जागता॥

भजनीय सो ही देव है।

भजनीय सो ही देव है, जो नित्य पूरण काम है।
सद्घन तथा चिद्घन तथा सम शान्त शिव सुखधाम है॥
सब नाम जिसके पाप हर कोई न जिसका नाम है।
सब धाम जिसके पुण्य-कर; कोई न जिसका धाम है॥

(२)

भजनीय सो ही देव है, जो दिव्य एक अनूप है।
आधीन जिसके विश्व सब, जो विश्व भरका भूप है॥
जो रूप लाखों धारता, कोई न जिसका रूप है।
भजता उसे जो धीर-नर, पड़ता न फिर भव कूप है॥

(३)

भजनीय सो ही देव है, मन बुद्धि से जो है परे।
निष्काम आत्माराम भी, निज भक्त हित लीला करे॥
ऐसे करे अद्भुत चरित, जिनके सुने मन-मल टरे।
पापी मनुज भी सहज में ही, घोर भव-सागर तरे॥

(४)

भजनीय सो ही देव है, कोई न जिससे वच सके।
कोई न जिसको भज सके, कोई न जिसको तज सके॥
सो ही उसे है भज सके, संसार भर जो तज सके।
संसार में आसक्त-नर, सौ-कल्प तक ना भज सके॥

(५)

भजनीय सो ही देव है, जो शुद्ध निःसंकल्प है।
जिसके विना कोई कभी, होता नहीं संकल्प है॥
जो है बड़े से भी बड़ा, जो अल्प से भी अल्प है।
छोटे-बड़े की कल्पना, होती न जिसमें स्वल्प है॥

(६)

भजनीय सो ही देव है, जिसमें कहीं ना जोड़ है।
है एक रस अक्षय सदा, कोई न जिसमें तोड़ है॥
ना ओर जिसका है कहीं, पाता न जिसका छोर है।
जो है, न है, सब आप है, जिसके सिवा ना और है॥

[७]

भजनीय सो ही देव है, जिसमें नहीं है द्वैतता।
अद्वैतता भी है नहीं, है ही नहीं जहां भिन्नता॥
विद्वज्जनों की कल्पना हैं, द्वैतता अद्वैतता।
ज्यों चन्द्र-दर्शन के लिये, तरु शाख का देते पता॥

[८]

भजनीय सो ही देव है, जिसमें न कोई रंग है।
सब रंग में है दीखता, पर आप तो बेरंग है॥
सब अंग जिसके अंग हैं, कोई न जिसका अंग है।
आकाश-तनु कहना उसे, उपदेश का यह ढंग है॥

[९]

भजनीय सो ही देव है; जिसकी गली अति तंग है।
दूजा जहां ना जा सके, यदि जाय होता भंग है।
यह बुद्धि जिसमें जाय के, अपना पता ना पाय है।
ज्यों बिन्दु जाके सिन्धु मांही सिन्धु ही हो जाय है॥

[१०]

भजनीय सो ही देव है, सनकादि जो सादर भजा।
राज्यादि बहु विक्षेप में जनकादि जो नाहीं तजा॥
भोला! न भोगासक्त हो भव सिन्धु मांही अब न जा।
भज ब्रह्म अज सुख रूप नित तज दुःखदामिथ्या अजा॥

यह ही सनातन धर्म है—

है देह खाने को मिला, नर मूढ़ ऐसा जानता।
खाना बना है देहहित, तत्वज्ञ ऐसा मानता॥
रूखा मिले चिकना मिले, भर पेट अपना लीजिये।
यह ही सनातन धर्म है, स्वाधीन रसना कीजिये॥

(२)

सामर्थ्य हो तो पूर्ण आयु, ब्रह्मचर्य निभाइये।
असमर्थ हो तो शिष्ट-कन्या, धर्मपत्नी कीजिये॥
उत्पन्न कीजे पुत्र-पुत्री, धर्म पत्नी सिखाइये।
यह ही सनातन धर्म है, परनारी से भय खाइये॥

(३)

दिन चार है रहना यहाँ, हिलमिल सभी से चालिये।
सम्बन्ध लाखों जोड़कर, बेड़ी न पग में डालिये॥
सच बोलिये, हित बोलिये, कड़वा कभी मत बोलिये।
यह ही सनातन धर्म है, तज दम्भ पूरा तोलिये॥

(४)

लाये यहां थे कुछ नहीं, ले भी नहीं कुछ जाइये।
अपना नहीं कुछ भी यहां, क्यों पाप व्यर्थ कमाइये॥
यदि पास देने को नहीं, तो मत किसी को दीजिये।
यह ही सनातन धर्म है, मत दूसरे का लीजिये॥

(५)

खाते सभी पीते सभी, निद्रा सभी ही लेय हैं।
बच्चे बना के पोष के; पशु भी बड़े कर देय हैं॥
पशु सम नहीं जीना भला, मत भोग में मन दीजिये।
यह ही सनातन धर्म है, शिव भक्ति सादर कीजिये॥

(६)

मत देह से मन बचन से, पीड़ा किसी को दीजिये।
यदि देय पीड़ा अन्य तो, प्यारे सहन कर लीजिये॥
जिस धर्म में नाहीं दया, सो धर्म दूषित जानिये।
यह ही सनातन धर्म है, शिव सर्व में पहिचानिये॥

(७)

निज पुत्र अरु पर पुत्र में, मत भेद किञ्चित् मानिये।
हो पुत्र का ना शोक तुमको, बात यह सच जानिये॥
दो द्रोह तज दो लोभ तज, सम शांत शुचि हो जाइये।
यह ही सनातन धर्म है, भय देखि मत घबड़ाइये॥

(८)

नर देह हड्डी मांस का है, कुछ न इसमें सार है।
करता न इसमें राग जो, भोला ! वही हुशियार है॥
निर्वैर जो हो सर्व में, निश्चय परम पद पाय है।
यह ही सनातनधर्म है, गीता यही सिखलाय है॥

अनोखे पत्ती—

पत्ती तीन उड़े थे जाते, एक-एक के पीछे ।
आगे हंस पिछाड़ी चिड़िया, कौवा सबसे पीछे ॥
चिड़िया चाहे हंस पकड़ना, हंस हाथ ना आवे ।
कौवा चिड़िया पकड़ा चाहे, पकड़ी नाहीं जावे ॥

(२)

सूतादिक सब शिष्य व्यास के, करते अध्ययन वन में ।
तीनों पत्ती उड़त देख कर, विस्मय पाये मन में ॥
जैमिनि आदिक सोचत सब ही, मर्म न समुझा जावत ।
पूछा चाहत गुरु व्यास से, पर पूछत सकुचावत ॥

(३)

मूर्ख समझ गुरु डाटें हमको, भय से पूछ न सकते ।
सब शिष्यों में श्रेष्ठ मानकर, सभी सूत मुख तकते ॥
उनके मनकी जान सूतजी, गुरु-चरनन शिर राखे ।
हाथ जोड़कर नम्र भाव से, बचन सुधामय भाषे ॥

(४)

हम सबके मन में है संशय, दूर दयानिधि कीजे ।
एक प्रश्न मैं करूं आप से, उत्तर गुरु जी दीजे ॥
कीचड़ में हो कीचड़ मिलती, पानी मांही पानी ।
मूर्ख मूर्ख की संगति करता, ज्ञानी की मुनि ज्ञानी ॥

(५)

देव-देव का होता सङ्गी, दैत्य-दैत्यका संगी।
विप्र-विप्र का हो सम्बन्धी, भङ्गी का हो भङ्गी॥
राजा से राजा का नाता, मिलता धनी धनी से।
भोगी का हो साथी भोगी, मिलता मुनी मुनी से॥

(६)

घोड़े से मिल घोड़ा चलता, कूकर से मिल कूकर।
बैल-बैल से गधा-गधे से, सूकर से मिल सूकर॥
हंस उड़े हैं साथ हंसके, काग कागका प्रेमी।
नवलेका हो प्रेमी नवला, नाग नागका प्रेमी॥

(७)

जाति-जातिसे प्रेम करे है, अन्य जातिसे नांही।
गुरुजी ! ऐसा नियम सनातन, हम देखा जग मांही॥
भिन्न-जाति के पक्षी तीनों, साथ उड़े हैं जाते।
पीछे एक एकके जाता, नहीं कभी बिलगाते॥

(८)

क्या कारण है, गुरो ! बताओ, नहीं समझ में आता।
बुद्धि हमारी है चकराती, मर्म न जाना जाता॥
सूत वचन सुन मुनिवर ज्ञानी, देख शिष्य चतुराई।
क्षणभर ध्यान लगा; मन थिरकर, बोले कुछ मुसकाई॥

श्री व्यासजी बोले—　　(९)

तात ! जानते बात सभी तुम, देते मुझे बड़ाई।
गोप्य-रहस्य सुनाऊँ इनका, सुनिये चित्त लगाई॥
जो तुम कहते सत्य सभी है, संशय किञ्चित् नांही।
प्रीति वैर दोनों ही होते, एक जाति के मांहीं॥

(१०)

सत्य सत्य में रहत सदा ही. असत् असत् में रहते।
सत्यासत्य कभी नहीं मिलते, संत तत्त्ववित् कहते॥
सत्यासत्य विवेकी नर ही, तत्त्व यथावत् जाने।
होय न रस्सी सर्प कभी भी, तदपि मूढ़ भय माने॥

(११)

यद्यपि पक्षी भिन्न-भिन्न हैं. साथ-साथ भी उड़ते।
फिर भी अलग-अलग ही रहते, नहीं कभी भी जुड़ते॥
जब छुटते ही नहीं परस्पर, मेल कहां है इनका।
मेल होय है तीन भांति का, भेद सुनो अव तिनका॥

(१२)

पहिला सम्यक् मेल होय है, दूजा अर्ध कहाता।
तीजा किञ्चित् मेल कहा है, वेद तत्त्व के ज्ञाता॥
जैसे क्षीर-क्षीर में मिलकर, क्षीर एक बन जाता।
जैसे नीर-नीर में मिलकर, नीर एक बन जाता॥

(१३)

मिलकर कोटि यत्न करने पर, अलग किया ना जाता।
विद्वानों के मतसे सोई, सम्यक् मेल कहाता॥
जैसे शक्कर मिले रेत में, क्षीर नीर के मांई।
चेंटे-चेंटी हंस आदि से, भिन्न कर लिये जांई॥

(१४)

अर्ध मेल कहलाता यह ही, मेल हुआ-सा भासे।
सम्यक् मेल नहीं होता है, अर्ध कहाता यासे॥
ईंट-ईंट पर काष्ठ-काष्ठ पर, रखने से मिल जावत।
अलग-अलग दोनों हो जाते, झट ही हाथ लगावत॥

(१५)

किञ्चित भी तो मेल नहीं है; मेल दीखता तो भी।
किञ्चित् काल होने से किञ्चित मेल कहाता सो भी॥
सम्यक् मेल नारी का होता, लोक दृष्टि से मानो।
सम्यक् मेल नहीं है सो भी तत्त्वदृष्टि से जानो॥

(१६)

तत्त्व एक हैं अद्वय सच्चा, निष्कल शान्त अमाया।
संवित शुद्ध निरामय शाश्वत, अवयवहीन अकाया॥
द्वैताद्वैत विवर्जित चिन्मय, नामरूप से न्यारा।
अज अव्यय अविनाशी भूमा, गिरा ज्ञानगो पारा॥

(१७)

स्वयंसिद्ध कूटस्थ निरञ्जन, निराधार अविकारी।
चिदानन्द सन्दोह सनातन, शोक-मोह-भय हारी॥
केवल अद्वय एकरस शिव में, भेद कहां से आया।
भेद नहीं तो मेल कहाँ है, भेद दिखाती माया॥

(१८)

होय नहीं फिर भी जो भासे, माया सो कहलाती।
सच्चा ब्रह्म छुपाकर ठगनी, मिथ्या जगत दिखाती॥
नहीं दूसरा कहीं कभी भी, फिर भी नर भय खावे।
समुझाये भी नहीं समझता, अचरज यह ही आवे॥

(१९)

अचरज भी कुछ नाहीं विद्वन्! मायेश्वर की माया।
लगी भूतनी सबके पीछे, जगत मांहि जो जाया॥
गुरु, ईश्वर, श्रुति, संत कृपा से, कोई विरला तरता।
राज्य अकण्टक अविचल पाता, मृत्युशीश पग धरता॥

(२०)

दैवीमाया से मायेश्वर, तीनों रूप धरे हैं।
जो तीनों का मर्म समझ लें, भवसे सहज तरे हैं॥
आध्यात्मादिक तीनों से ही, छूट परम पद पाते।
नहीं जन्मते नांही मरते, अजर-अमर हो जाते॥

(२१)

हंस जानिये संत विवेकी, विषय-विमुख विज्ञानी।
कौवा भोगासक्त मूढ नर, ईश्वर-विमुख अज्ञानी॥
चिड़िया रंग-बिरंगी दुनियां, दीखत सुघड़ सुहानी।
भीतर से अति मलिन दुःखदा, समस्त अवगुण खानी॥

(२२)

दुनियां नाम दुई का विद्वन्! दुई भेद कहलावे।
भेद देखता भय सो पाता, पुनि-पुनि दुःख उठावे॥
भेद न त्यागे जब तक प्राणी, भव से छूट न पावे।
दूजे से निश्चय ही भय हो, डङ्का वेद बजावे॥

(२३)

पूर्वकल्प में सूर्य ब्रह्म से, भेद तनक-सा माना।
नहीं छुटेगा एक कल्प तक, उत्तर दक्षिण-जाना॥
इसी हेतु से चन्द्र मास भर, घटता, बढ़ता रहता।
पूरा होता प्राय तभी ही, राहु उसे है गहता॥

(२४)

वायु मान कर भेद ब्रह्म से, विश्व बुहारी देता।
मृत्यु सदा ही दौड़ा करता, पल भर चैन न लेता॥
अचला देवी भूत चराचर, बोझ सर्वदा सहती।
खोदा खोदी सहे रात दिन, फिर भी चुपकी रहती॥

(२५)

यद्यपि ये सर्वज्ञ सभी हैं, वेद धर्म के ज्ञाता।
कर्म, उपासन, ज्ञान, जानते, ब्रह्मतत्त्व विज्ञाता॥
तो भी किञ्चित् भेद किये से, नहीं जन्म से छूटे।
भेद गये बिन चिज्जड़ग्रन्थी, नाहीं सम्यक् टूटे॥

(२६)

राग-द्वेष हों भेद दृष्टि से, भला बुरा फिर भासे।
करता कर्म शुभाशुभ प्राणी, पुण्य पाप हो तासे॥
कहा पुण्यफल सुख का अनुभव, दुःख पापफल गाया।
दुःख तथा सुख अनुभव करने, धरे अनेकों काया॥

(२७)

काया से फिर कर्म करे हैं, ऊँचा नीचा जाता।
देह कर्मसे; कर्म देहसे; होते, छूट न पाता॥
भेद देखता जब तक प्राणी, धर्मा-धर्म करे हैं।
धर्माधर्म करे हैं जब तक, भवसे नांहि तरे हैं॥

(२८)

आंखिन से जो कुछ है दीखत, कानन देय सुनाई।
चिन्तन हो जो मन-बुद्धि से, दुनिया सभी कहाई॥
दो प्रकार की दुनिया, बाहर एक दीखती जो है।
नाम, रूप, रवि, चन्दा, आदिक, ईश बनाई सो है॥

(२९)

दूजी दुनिया भीतर मनकी, जीव रची है सोई।
सब जीवों की अपनी-अपनी, भिन्न-भिन्न सो होई॥
माया यही अविद्या यह ही, यही कहाय अहंता।
मोह यही अज्ञान यही है, नाम इसीका ममता॥

(३०)

आशा, तृष्णा, चिन्ता, मत्सर, ईर्षा, मेरा, तेरा।
काम, क्रोध, लोलुपता, इसका, है परिवार घनेरा॥
सत्त्व तथा रज, तम गुण तीनों, रूप उसी के जानो।
जितना भेद दीखता जग में, किया इसी का मानो॥

(३१)

जैसे कौवा चतुर बहुत है, तो भी विष्ठा खावे।
भोगासक्त पुरुष भी त्यों ही, शिव तज शवकूं ध्यावे॥
अथवा आप परम सुख शिव हैं, ताकूं तो बिसरावे।
हड्डीमांस चामके तनमें, तेल-फुलेल लगावे॥

(३२)

प्राणी सभी चाहते सुख हैं, सुख नांही पर पाते।
ज्यों-ज्यों सुखहित यत्न करे हैं, त्यों-त्यों दुःख उठाते॥
आत्मा मानत देह मरी कूं, देह नहीं है शाश्वत।
मूढ़ देहकूं पालत पोषत, काल आय ले जावत॥

(३३)

सुखभण्डार शान्तशिवआत्मा, अच्युत अजअविनाशी।
स्वयं सिद्ध कूटस्थ एकरस, चिन्मय घट घटवासी॥
व्यापक सर्वविश्वके मांही, सर्वप्रकाशक स्वामी।
ऐसे को भी देख न सकता, भाग्यहीन नर कामी॥

(३४)

भीतर मूढ़ देखता नांही, बाहर फिरे भटकता।
तपे धूप में, जलमें गलता, उलटा मूढ़ लटकता॥
देश-विदेश फिरे है मारा, दुःखी दीन है होता।
घी पावे सो भला कहां से, जो है नीर विलोता॥

(३५)

नारी से नर सुख है चाहत, नरसे चाहत नारी।
हाड़मांस से सुख हो कैसे, होय दुःख ही भारी॥
सुत में, धन में, ग्राम धाम में, सुख है ढूँढत कोई।
देह रोगमय क्षणभंगुर है, सुखी कहाँ से होई॥

(३६)

जाग्रत् में सच-झूँठ बोल कर करे पेट का धंधा।
स्वप्न मांहि दुःस्वप्न देखता, भटके है ज्यों अंधा॥
सोवत होय अचेत मरा-सा, भूल सभी कुछ जाता।
तीन नारिका स्वामी जैसे, दुःख सदा ही पाता॥

(३७)

जैसे कुत्ता हाड़ चबावत, स्वाद नहीं कुछ पावत।
हड्डी चाबत छिलै मसूड़ा, रक्त निकल है आवत॥
रक्त चाटकर मूढ़ कूकरा, हड्डी में सुख जानत।
त्यों ही सुख तो अपना ही है, मूढ़ अन्य में मानत॥

(३८)

सुख है अपने आप मांहि ही, अन्य मांहि सुख नाहीं।
ऐसा जानत हंस विवेकी, फँसता ना उन मांही॥
भजता अपना आप सदा ही, विषय भोग सब त्यागत।
देह गेह की ममता तज कर, शिवमें ही अनुरागत॥

(३९)

आशा तृष्णा दूर तजे है, चिन्ता लेश न करता।
आप आपमें क्रीड़ा करता, सुख से सदा विचरता॥
नहीं कामना नहीं वासना, मन में उसके आवे।
नहीं पदारथ जग का कोई, उसको कभी लुभावे॥

(४०)

यथा लाभ संतोष सदा ही, कोई वस्तु न चाहे।
प्रारब्ध कर्म से देह बना है, चिन्ता ही फिर क्या है॥
शम दमयुक्त विमल मन योगी, निर्मोही निःशोकी।
सत्य ब्रह्म देखत सब मांहीं, जानत स्वप्न त्रिलोकी॥

(४१)

नहीं वैर ना राग किसी से, ब्रह्मरूप सब जानत।
अभय रहे भय नहीं मनावे, विश्वकल्पना मानत॥
नहीं विषमता भजे स्वप्न में, भजे निरन्तर समता।
अहंकार से शून्य सदा ही, नहीं लेश भी ममता॥

(४२)

शीतल चित्त द्वन्द्व से छूटा, निश्चलमति निष्कामी।
देही तदपि देह से न्यारा, शान्त आत्मारामी॥
पावन विश्वदर्श से करता, भाषण से अघ धोता।
ब्रह्मतत्त्व में जगे सदा ही, रहे विश्व से सोता॥

(४३)

जैसा अद्भुत रस वह चाखे, संसारी ना जाने।
अदरक का गुण-स्वाद बांदरा, जैसे ना पहिचाने॥
ऋद्धी सिद्धी हाथ जोड़ती, ठोकर देय भगावे।
गंगानीर पान कर क्या फिर, मरुजल देखि लुभावे॥

(४४)

हंस विवेकी बनो सूत ! तुम दुनियां से मुख मोड़ो।
कौवे सम मत दीन कभी हो, शिव मांही मन जोड़ो॥
हरि हर से बस नाता रक्खो, जग नाते सब छोड़ो।
ब्रह्म मांहि तल्लीन होय के, दुनियां भांडा फोड़ो॥

[४५]

पक्षी तीनों यही सिखावें, शिक्षा उनसे लीजे।
भजो निराशा, जग की आशा कभी भूल मत कीजे॥
आशा फाँसी डाल गले में, मूढ दुःख है पाता।
आशा फाँसी तोड़ विवेकी, सुखी शान्त हो जाता॥

गीतासार—

है सार गीता का यही, भव धर्म तजना चाहिये।
मन कर्मवाणी से सदा धर्मेश भजना चाहिये॥
करने न करने में कभी नाहीं उलझना चाहिये।
कर्ता अकर्ता कौन है? सम्यक् समझना चाहिये॥

[२]

मन शुद्ध दाता मोक्षका, विपरीत मन बंधन करे।
जो धीर करले शुद्ध मन, भवसिन्धु से निश्चय तरे॥
मन शुद्ध करने के लिये निज धर्म करना चाहिये।
जिसके लिये जो है विहित सो कर्म करना चाहिये॥

[३]

जब तक न हो मन शुद्ध तब तक कर्म में तत्पर रहे।
छोड़े नहीं सुत दार धन कल्याणकांक्षी घर रहे॥
जो कुछ करे दानादि सब विश्वेशके अर्पण करे।
अभिमान अपना त्याग दे, फल में कभी ना मन धरे॥

[४]

यह बात सम्यक् सत्य है, संन्यास सबसे श्रेष्ठ है।
तो भी बिना अधिकार का संन्यास करना भ्रष्ट है॥
ना कर्म तजना योग है, ना अग्नि तजना न्यास है।
सब कर्म का फल त्यागना, माना यही संन्यास है॥

[५]

संसार यह निस्सार है, ईश्वर भजन ही सार है।
सब कर्म तज ईश्वर भजे, पंडित वही हुशियार है॥
तज राग दे, तज द्वेष दे, शब्दादि पांचो त्याग रे।
मन इन्द्रियां स्वाधीन कर ईश्वर भजनमें जाग रे॥

[६]

एकान्त पावन देश में कुटिया बना कर वास रे।
दूजे किसी को मत बुला, मत जा किसी के पास रे॥
विक्षेप मन के दे हटा आसन लगाकर ध्यान कर।
सब वस्तुओं को भूल केवल आत्म अनुसंधान कर॥

[७]

मत बाह्य का कुछ ध्यान कर, भीतर मतीकर चिंतवन।
संकल्प से कर शून्य मन को आप तू होजा अमन॥
जिसमें न यह वह लेश है, जो सत्यका भी सत्य है।
जो एकरस आनन्दघन, अच्युत अनामय नित्य है॥

(८)

जब मन अमन हो जाय है, तब शेष सो रह जाय है।
यह विश्व लय हो जाय है, सर्वत्र सो ही पाय है॥
करके उसी का ध्यान निशिदिन वासनायें काट रे।
ना लेश भी रख कामना, एकैक करके छांट रे॥

(९)

चिन्ता न करनी चाहिये, आशा न रखनी चाहिये।
तज अन्य केवल आत्मका ही ध्यान धरना चाहिये॥
निर्वासना मन को बना सुख से विचरना चाहिये।
ममता अहंता छोड़कर निर्भय बिचरना चाहिये॥

(१०)

ना शोक करना चाहिये, ना मोह करना चाहिये।
जब एक अपना आप है, क्यों व्यर्थ डरना चाहिये॥
भोला ! शरण ले ईशकी भवसिन्धु तरना चाहिये।
जन्मा मरा अब तक घना, अब तो न मरना चाहिये॥

क्या करना चाहिये ?

ना राग, नांही द्वेष, नांही रार करना चाहिये।
छोटे बड़े सब जन्तुओं को प्यार करना चाहिये॥
सच्चा, सरल, सीधा सदा, व्यवहार करना चाहिये।
निज आत्म के उद्धार हित व्यापार करना चाहिये॥

[२]

गुरु जान करना चाहिये, जल छान पीना चाहिये।
शव देह की आसक्ति तज, शिव हेतु जीना चाहिये ॥
रवि चन्द्र पर्वत मेघ सम, निर्हेतु जीना चाहिये।
टूटे न जग मर्याद ज्यों जल सेतु जीना चाहिये ॥

[३]

ना ऋद्धि में ना सिद्धि में ही अब अटकना चाहिये।
भटका बहुत भव भूमि में अब ना भटकना चाहिये ॥
मटका धनी मर्कट यथा, अब ना मटकना चाहिये।
लादा बहुत शिर बोझ अब, बोझा पटकना चाहिये ॥

[४]

सब इन्द्रियाँ स्वाधीन करके दान्त होना चाहिये।
शिव शान्तका कर ध्यान पावन शान्त होना चाहिये।
मिथ्या जगत् की चमक से ना भ्रान्त होना चाहिये।
सायुज्य शिव का पाय के! दुःखान्त होना चाहिये ॥

[५]

रह दुर्जनों से दूर ही दुस्संग तजना चाहिये।
रह सज्जनों के संग में सत्संग भजना चाहिये ॥
सब रंग कच्चे धोय पक्के रंग रँगना चाहिये।
बहु काल सोते, हो गया, तज नींद जगना चाहिये ॥

[६]

धीरज धरा से सीख करके धीर बनना चाहिये।
गिरि सम अचल दृढ़, सिंधु सम गंभीर बनना चाहिये ॥
परताप हरने हेतु गंगा नीर बनना चाहिये ॥
दानी अमानी ज्ञानियों में मीर बनना चाहिये ॥

[७]

ज्यों सूर्य जल, त्यों द्रव्य कर एकत्र लेना चाहिये।
अधिकारियों को समय पाकर बाँट देना चाहिये ॥
दर्पण यथा मन मांहि ले सब त्याग देना चाहिये।
ज्यों केमरा संस्कार नांही दाव लेना चाहिये ॥

[८]

ना हर्ष, नांही शोक, नांहीं लोभ करना चाहिये।
यदि मृत्यु दीखे सामने, तो भी न डरना चाहिये ॥
आत्मा ना जन्मे मरे, निश्चय न हटना चाहिये।
शिव देह में से भिन्न कर शिव मांहि डटना चाहिये ॥

[९]

यह बंधु है, यह शत्रु है, यह भेद तजना चाहिये।
सब ब्रह्म के ही रूप हैं, ऐसा समझना चाहिये ॥
करने न करने में कभी नाहीं उलझना चाहिये।
चेतन अचेतन ग्रन्थि दृढ़सम्यक् सुलझना चाहिये ॥

[१०]

मैं देह हूँ, संकल्प यह, ना भूल करना चाहिये।
ममता अहंता देह की निर्मूल करना चाहिये॥
मन हाथ में विज्ञान की तलवार लेना चाहिये।
अज्ञान का शिर काट भोला! मार देना चाहिये॥

कुछ नहीं तूने किया—

रथ अश्व गजपर चढ़ चुका, मोटर फिटन में चढ़ लिया।
बैठा जहाजों में बहुत देशों विदेशों फिर लिया॥
ज्यों चील वायुवान चढ़, आकाश में भी उड़ लिया।
यदि है न योगारूढ़ तू, तो कुछ नहीं तूने किया॥

(२)

धनके कमाने के लिये, सीखीं बहुत-सी युक्तियां।
खोले हजारों पेंच या, खोली बहुत-सी कोठियां॥
लाखों करोड़ों अरब धन, एकत्र तू ने कर लिया।
पाया नहीं संतोष धन, तो कुछ नहीं तूने किया॥

(३)

भूगोल पढ़, इतिहास पढ़, षट्शास्त्र तू पढ़ने लगा।
भाषा बहुत-सी सीखकर, जाने सभाओं में लगा॥
व्याख्यान देकर चटपटे, रञ्जन प्रजा का कर लिया।
शिक्षा न दी यदि आपको तो कुछ नहीं तूने किया॥

(४)

दृष्टान्त रोचक जानता, रञ्जक बचन उच्चारता।
है तर्क करने में कुशल, नाँही किसी से हारता॥
सब पण्डितों को जीतकर, तू विश्वविजयी हो गया।
कामादि यदि जीते नहीं तो, कुछ नहीं तूने किया॥

(५)

कूवें खुदाये बावड़ी, ऊंचे महल दीन्हें चुना।
हैं खोल दीन्हें क्षेत्र भी, फैली जगत में नामना॥
दे दान निशदिन दानियों, को मात तूने कर दिया।
त्यागा नहीं अभिमान यदि, तो कुछ नहीं तूने किया॥

(६)

ठाकुर हुआ तू ग्राम का, या देश का राजा हुआ।
या विश्वभर को जीत कर, राजा महाराजा हुआ॥
सौ यज्ञ करके इन्द्र पद भी, प्राप्त तूने कर लिया।
यदि मृत्यु जो जीता नहीं, तो कुछ नहीं तूने किया॥

(७)

मन इन्द्रियाँ वश में करीं, सब प्राप्त कर ली ऋद्धियां।
रवि आदि में संयम कियां, की प्राप्त सब ही सिद्धियाँ॥
करके समाधि पर समाधि, सिद्ध योगी हो गया।
निर्मूल नहीं की वासना, तो कुछ नहीं तूने किया॥

(८)

पञ्चाग्नि विद्या जानता, पर्यङ्क विद्या मन दिया।
शाण्डिल्य विद्या सिद्ध की, स्वाध्याय वेदों का किया॥
चिरकाल करके घोर तप, तू दूसरा ब्रह्मा हुआ।
संसार से यदि ना छुटा, तो कुछ नहीं तूने किया॥

(९)

सब कर्म करता ईशहित, ईश्वर परायण है सदा।
अनुरक्त हरदम ईश में, निःसङ्ग सबसे सर्वदा॥
निर्वैर है निर्द्वन्द्व है, बिनु हेतु करता है दया।
भोला ! नहीं कुछ भी किया, तो भी सभी कुछ कर लिया॥

सज्जन स्वभाव—

ज्यों पुष्प, दक्षिण वाम करको; गंध देते एक-सा।
त्यों सन्त, दुर्जन सज्जनों से प्यार करते एक-सा॥
पर-श्रेय में तत्पर रहें; यदि सन्त तो आश्चर्य क्या।
शीतल-करन निज देह, चन्दन-वृक्ष लेता जन्म क्या॥

(२)

धन पूर्ण भी मद-शून्य हो, धन हीन भी हो निस्पृही।
ऐश्वर्य पाकर नम्र हो, शुचि सन्त की महिमा यही॥
सज्जन करत सब पर दया, हो दुर्गुणी या सद्गुणी।
चण्डाल के न घर में चन्दा, अल्प देता चाँदनी॥

(३)

अद्भुत चरित हैं सज्जनों के, ना समझ में आय हैं !
लक्ष्मी गिने तृण-सम, न उसके; मोह में फँस जाय हैं ॥
उपदेश देने की चतुरता; हर किसी को आय है।
निज-धर्म पालक सन्त, लाखों मांहि विरला पाय है ॥

(४)

कोमल, अधिक हों फूल से भी, वज्र से भी कठिन तर।
ऐसे अलौकिक सन्त को, कैसे लखे यह मूढ़ नर ॥
ना दुर्जनों के संग से भी, सन्त होते हैं विकल।
लिपटे रहे हैं सर्प चन्दन में नहीं आता गरल ॥

(५)

विद्या-विनय-संपन्न पावन सन्त पंखा जानिये।
जो नित्य ही करता भ्रमण, पर-ताप हरने के लिये ॥
जस चित्त तैसा वाक्य है, जस वाक्य तैसा कर्म है।
मन कर्म वाणी एक से, यह सज्जनों का धर्म है।

(६)

सद्वाक्य लीला से कहे पत्थर लिखे सम हों अमिट ॥
दुर्वाक्य खाकर शपथ भी, जल पर लिखे सब जाय मिट।
जो मित्र का ही मित्र हो, सज्जन न उसको जानिये।
हो शत्रु का भी मित्र जो, सज्जन उसे पहिचानिये ॥

(७)

सज्जन हृदय, मैं मानता हूँ, अति कठिन पाषाण से।
वेधे नहीं वे जा सकें, खल वाक्य तीक्षण बाण से॥
निज-भावको नहिं त्यागते हैं, सन्त दुर्जन संग से।
मैंना मधुर स्वर त्यागती क्या काक के संसर्ग से?

(८)

ज्यों प्राण हमको इष्ट हैं, त्यों सर्व को ही इष्ट हैं।
अपने सदृश सब पर दया करते सदा ही शिष्ट हैं॥
विद्वज्जनों के पुष्प सम दो ही सुने व्यापार हैं।
बन-मांहि जाते सूख सबके होंय या शिर मौर हैं॥

(९)

संपत् सहित चातुर्यता चातुर्यता सब नम्रता।
शुचि-सन्त के ये चिह्न हैं; ऐश्वर्य सह माधुर्यता॥
नाहीं बिपत् के मांहि भी, सज्जन तजत हैं शिष्टता।
कर्पूर जलने के समय, देता अधिक सौरभ्यता॥

(१०)

कामादि दुर्गुण त्याग सह, शमदम तितिक्षा युक्तनर।
प्रह्लाद-सम आपत्तियों से, सहज में ही जाय तर॥
दुस्संग भोला! त्याग दे, सत्संग सादर नित्य कर।
आसक्त मत हो भोग में, शिव-शान्तका नित ध्यान कर॥

ईश्वर ने यह पेट क्यों बनाया ?

अज्ञान अजगर का डसा, यह विश्व पूर्ण अचेत था।
सोया मरा सा था पड़ा, कुछ भी इसे ना चेत था॥
इस विश्व को चैतन्य करने पेट ईश्वर रच लिया।
घुँस पेटरूपी पोल में, चैतन्य उसको कर दिया॥

(२)

चैतन्य होकर विश्व यह सुखदुःख जानन लग गया।
सुखको बुलावन; दुःखको, निशदिन हटावन लग गया॥
यह पेट यदि होता न तो, हम दुःख कैसे जानते।
यदि दुःख नाहीं जानते, सुख भी नहीं पहिचानते॥

(३)

सुख दुःख अरु अच्छा बुरा, यह पेट ही बतलाय है।
क्या धर्म और अधर्म क्या, यह पेट ही सिखलाय है॥
क्या बंध है, क्या मोक्ष यह भी पेट ही दिखलाय है।
भव बंध से छुड़वाय, यह ही मोक्ष पद दिलवाय है॥

(४)

होता नहीं यदि पेट तो, वेदाङ्ग रचता कौन फिर।
वेदाङ्ग यदि होते नहीं, तो वेद पढ़ता कौन फिर॥
पढ़ता नहीं यदि वेद कोई, कर्म करता कौन फिर।
करता नहीं यदि कर्म ही तो स्वर्ग चढ़ता कौन फिर॥

(५)

होता नहीं यदि पेट यह, तो कौन चुल्हा फूँकता।
चुल्हा बिना फूंके अतिथि को कौन कैसे पूजता॥
सबके गुरु संन्यासि का अभिमान कैसे छूटता।
अभिमान के छूटे बिना भव बंध कैसे टूटता॥

(६)

यदि पेट कुत्ता हो नहीं, वैराग्य सीखे कौन फिर।
वैराग्य यदि होवे नहीं, तो भोग त्यागे कौन फिर॥
त्यागे नहीं यदि भोग तो वेदान्त समझे कौन फिर।
वेदान्त यदि समझे नहीं, तो मोक्ष पावे कौन फिर॥

(७)

सारांश यह है पेट ने ही विश्व सारा है रचा।
खा जाय यह सब विश्व को अरु खाय के लेता पचा॥
ब्रह्मांड में है ज्ञान जितना पेट मांही है भरा।
छोटे बड़े सब जानते, सिद्धान्त यह ही है खरा॥

(८)

यह पेट देता दुःख है, ऐसा कहे सो मूढ़ है।
मन मलिन मतिका मन्द है, चातुर्यता से दूर है॥
जहं भेद है तहँ दुःख है, एकत्व जहं सुख है तहां।
एकत्व दर्शन पेट में है दुःख हो कैसे वहां॥

(९)

यह पेट निश्चय ब्रह्म है, श्रुति भगवती सिखलाय है।
ऐसा उपासन जो करे, सो पेट से छुट जाय है॥
जो पिंड सो ब्रह्माण्ड है, ब्रह्माण्ड जो सो पिंड है।
अध्यस्त दोनों ब्रह्म माहीं, ब्रह्माण्ड एक अखण्ड है॥

(१०)

भोला ! उदर भरते सभी, तू उदर में ही ब्रह्म लख।
जैसे उदर में विश्व में रस ब्रह्मका ही स्वाद चख॥
जो सर्प है सो रज्जु है, इसमें नहीं संदेह है।
तो पेट ही है ब्रह्म, यह भी सत्य निःसंदेह है॥

अहिंसा धर्म—

शम दम अहिंसा सत्य भाषण चाहना हित सर्वका।
सच्चा यही है तप, नहीं है तप सुखाना देह का॥
मन कर्म वाणी से मती पीड़ा किसी को दीजिये।
क्या शत्रु हो क्या मित्र होवे प्यार सबसे कीजिये॥

(२)

शौचादि पांचों पालते, पालत अहिंसादि सदा।
सच्चे अहिंसक धन्य वे, शिवभक्ति में रत सर्वदा॥
सब मांहि शिव, शिव मांहि सब जो देखते वे धन्य हैं।
कैसे करें हिंसा भला देखत नहीं वे अन्य हैं॥

(३)

आसक्ति करना देह में, हिंसा प्रथम हैं आपकी।
जो आपकी हिंसा करें क्यों ना करें फिर अन्य की॥
अपनी नहीं हिंसा करें तो होय ना हिंसा कभी।
अपनी मतो हिंसा करो, श्रुति सन्त कहते हैं सभी॥

(४)

हिंसक महा है क्रोध, क्रोधी आप हिंसक आपका।
पीछे तपाता अन्य, पहिले आप पुतला तापका॥
पूरा अहिंसक धीर जो वश क्रोध को कर लेय है।
शीतल रहे है आप शीतल अन्य को कर देय है॥

(५)

जो मांस नांही खाय है, वध ना करे ना कराय है।
सो । सर्वभूतों का सुहृद ही, मोक्ष पदवी पाय है॥
खादक न कोई हो जहां, घातक न कोई हो तहां।
घातक नरक में जाय खादक जाय है पहिले वहां॥

(६)

ग्राहक करे वध द्रव्य से, खादक करे वध खायके।
घातक करे वध बांधकर, सूने सदन में लायके॥
मरना न तुमको इष्ट है, मत दूसरे को मारिये।
है जान प्यारी आपकी, त्यों अन्य जान बिचारिये॥

(७)

सुख दुःख देवें अन्य को, सो आप ही को होय है।
सुख देय नांही दुःख दे, पण्डित कहाता सोय है॥
जो आप नांही चाहते, सो अन्य को मत दीजिये।
हित चाहते हो आपना, तो अन्य का हित कीजिये॥

(८)

ज्यों आपका त्यों अन्य का, जो हित करे सो धन्य है।
सच्चा अहिंसक आत्मज्ञानी, होय सो जग-मन्य है॥
ना शान्तिसम तप अन्य है, संतोषसम सुख अन्य ना।
ना रोग तृष्णा से अधिक, वढ़कर दया से धर्म ना॥

(९)

यदि स्वार्थ अपना मानकर, ज्ञानी लगेंगे ध्यान में।
दुःखार्त जनको कौन फिर लेजाय पथ कल्याण में॥
सम शान्त रहते आप, करते सर्व को सम शान्त हैं।
ऐसे विवेकी ही कहाते, साधु अथवा सन्त हैं॥

(१०)

क्रोधी न बन, कामी न बन, लोभी न बन मानी न बन।
पीड़ा किसी को दे मती, भोला! सदा रख शान्त मन॥
जब शान्त तू हो जायगा, तब शान्त जग हो जायगा।
ना दुःख पावेगा कहीं, सर्वत्र ही सुख पायगा॥

ब्रह्माभ्यास—

(१)

कुछ भी यहां पर सिद्ध ना होता विना अभ्यास के।
अभ्यास से ही हो सके जो कुछ कहीं पर हो सके॥
जीवत्व है दृढ़ हो गया, देहत्व के अभ्यास से।
कैवल्य निश्चय सिद्ध हो, ब्रह्मत्व के अभ्यास से॥

(२)

सद्ब्रह्म का करना कथन, सद्ब्रह्म का करना श्रवण।
सद्ब्रह्म का करना मनन, सद्ब्रह्म का ही चिन्तवन॥
कहलाय ब्रह्माभ्यास है, लीजे उसी की ही शरण।
चिरकाल सादर कीजिये, यदि चाहते हो भव तरण॥

(३)

नरधीर भोग विरक्त ही संसार में जय पाय है।
नरमूढ़ भोगासक्त पामर हार पुनि पुनि जांय है॥
संसार से मुख मोड़ ब्रह्माभ्यास मित्रो! कीजिये।
भवजेल में से छूट कर, स्वाराज्य सुखमय लीजिये॥

(४)

वैराग्य में आनन्द जैसा, अन्य में ना पाइये।
वैराग्य रस प्याला पिलाकर बुद्धि स्वच्छ बनाइये॥
वैराग्य रस का पान कर जब अमला मती हो जाय है।
ब्रह्मत्व के अभ्यास में तब स्वाद अद्भुत पाय है॥

(५)

ब्रह्मानुरागी धीरनर ही ब्रह्म रस हैं चख सकें।
हतभाग्य भोगी मूढ़ नांही श्रोत्र तक तहं रख सकें॥
ईश्वर कृपा से ब्रह्म रस की छींट भी जो पाय है।
पांचों विषय फीके लगें, फिर मन न उनमें जाय है॥

(६)

यह दृश्य जो कुछ दीखता है तुच्छ है, निःसार है।
मन इन्द्रियां देहादि सब यह दृश्य का विस्तार है॥
क्षण भर रहे ना एक सा क्षण क्षण बदलता रंग है।
आत्मा नहीं सो हो सके वह तो सदा निःसंग है॥

(७)

जो कुछ यहां है दीखता, ना ब्रह्म से कुछ अन्य है।
ज्यों रज्जु कल्पित सर्प नांही रज्जु से कुछ भिन्न है॥
सद्ब्रह्म ही है एक तो फिर हो कहां से भिन्नता।
सद्ब्रह्म ही जग दीखता जब ब्रह्म नाहीं दीखता॥

(८)

ज्यों रज्जु के अज्ञान से बन रज्जु सांपिन जाय है।
त्यों ब्रह्म के अज्ञान से जग ब्रह्म ही बन जाय है॥
ज्यों रज्जु सम्यक् ज्ञान से, यह दृश्य सर्प विलाय है॥
त्यों ब्रह्म सम्यक् ज्ञान से, पर दृश्य सर्व विलाय है॥

(९)

ज्यों रज्जु ही हो ज्ञान मांही रज्जु ही अज्ञान में।
त्यों ब्रह्म है अज्ञान मांही ब्रह्म ही है ज्ञान में॥
जो आदि में अरु अन्त में, होता वही है मध्य में।
ना आदि में ना अन्त में, तो जग नहीं है मध्य में॥

(१०)

भोला ! सभी जग ब्रह्म है, तो द्वेष किससे कीजिये।
जब विश्व है सब कल्पना, तो चित्त किसमें दीजिये॥
मत राग कर मत द्वेष कर कर नित्य बोधाभ्यास रे।
जो बंध है, सो ब्रह्म है, दे त्याग देहाभ्यास रे॥

है मूर्ख की पहिचान क्या ?

राजे महाराजे यहां से, कूच लाखों कर गये।
बूढ़े बड़े सब चल दिये, माता पितादिक मर गये॥
तो भी मरूँगा मैं नहीं, विपरीत ऐसा ज्ञान है।
मृत देह शाश्वत मानना, यह मूर्ख की पहिचान है॥

(२)

जाता नहीं धन साथ में, ना साथ जाता धाम है।
रहता यहां का है यहीं, ना अन्त आता काम है॥
फिर भी न खाता पहिनता, करता न कुछ भी दान है।
धन खोद गड्ढा गाड़ता, यह मूर्ख की पहिचान है॥

(३)

मीठे वचन सन्मान में, पैसा ना धेला जाय है॥
मीठे वचन सन्मान से, नर कीर्ति जग में पाय है॥
तो भी न मीठा बोलता देता नही सन्मान है।
करता अकारण क्रोध है, यह मूर्ख की पहिचान है॥

(४)

शम दम तितिक्षा से रहित, लोभादि के आधीन है।
संसारियों के सामने, होता सदा ही दीन है॥
जपता न हरि हर नाम है, करता न शिवका ध्यान है।
भाती नहीं हैं हरि कथा, यह मूर्ख की पहिचान है॥

(५)

दो व्यक्तियों के वाद में, पूछे बिना ही बोलता।
आलस्य में रहता पड़ा, या बे प्रयोजन डोलता॥
सत्संग में जाता नहीं, करता न जिक्र कल्याण है।
हो भ्रष्ट दोनों लोक से, यह मूर्ख की पहचान है॥

(६)

शास्त्रज्ञ नहि तत्त्वज्ञ नहि, नहि जानता क्या श्रेय है।
नहि प्रेय को ही जानता, उपदेश तो भी देय है॥
नहि धर्म का न अधर्म का, कुछ भी जिसे विज्ञान है।
मन में अनेकों वासना, यह मूर्ख की पहिचान है॥

(७)

है आप भोगों में फंसा, सबको फंसाता भोग में।
चिन्ता करे है रात-दिन, रोगी रमा भव रोग में॥
श्रुति-सन्त की सुनता नहीं, अपनी अलापे तान है।
है अज्ञ पर पण्डित बने, यह मूर्ख की पहचान है॥

(८)

भोला! भला ना स्वर्ग में भी, मूर्ख का सहवास है।
उत्तम नरक का वास है, यदि ना विवेकी पास है॥
वह है विवेकी धीर जो, सम शान्त एक समान है।
विक्षिप्त मन अरु भ्रान्त मति, यह मूर्ख की पहिचान है॥

हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो।

क्यों झूठ बाणी बोलकर तुम, पाप में हो फँस रहे?
क्यों व्यर्थ की गप्पें उड़ाकर, व्यर्थ जीवन खो रहे?
अब चेत लो! गाफिल मुसाफिर!! पापका संगी न हो।
विश्वास रख, तुम प्रेम से, हरि ॐ तत्सत ॐ कहो॥

(२)

विषमय कहानी विषय की, तुम रात दिन कहते रहे।
अति कष्ट पा, तम—दुःखमय, संसार में सड़ते रहे॥
सुख शान्ति का दर्शन परन्तु, क्या हुआ है तुम कहो।
सब छोड़ हरि-गुणगान कर, हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो॥

हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो।

(३)

सुख के लिये जग-भोग में, तुम हाथ फैलाते रहे।
पर हाथ में दुःख शोक अरु, विक्षेप ही हैं आ रहे॥
इन इन्द्रियों की लालना अब, छोड़ संयम से रहो।
आनन्द से अति प्रेम से, हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो॥

(४)

उछले सदा, कूदे सदा, घूमे सदा, तुम व्यर्थ ही।
संसार की इस दौड़ में कुछ, लाभ होता है नहीं॥
है लाभ की इच्छा अगर तो, शिव शरण में हो रहो।
हरदम हरि-हर ध्यान कर, हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो॥

(५)

जग-जाल की तुम मृत-कथा, सुनते रहे हो सर्वदा।
शव हो गये हा! मर गये, जग-जालमें फंसकर सदा॥
अब चेत लो!! शिव तत्त्व की, अमृत-कथा सुनते रहो।
अति प्रेम से शिव शिव रटो, हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो॥

(६)

मिथ्या जगत के दृश्य को, तुम देखते ही रह गये।
भोगी बने द्वेषी बने, अति-मोह में हा! फंस गये॥
दिन चार का यह है तमाशा, खास आखिर याद हो।
जाना अकेला छोड़ सब, हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो॥

(७)

'है देह हूँ' यह छोड़ दो, 'हरि ॐ—यह धार लो।
निज आत्म में आराम कर, सब काम को तुम मार लो॥
चर अचर सब इस विश्व में, हरि ॐ का ही ख्याल हो।
हरि ॐ में तल्लीन हो, हरि ॐ तत्सत् ॐ कहो॥

आशा-निराशा !

आशा सुखाती रक्त है, बहु जन्मतक है मारती।
करती निराशा है सुखी, भवसिन्धु से है तारती॥
नर मूढ आशासक्त हो, बहु योनियों में जावता।
नर धीर आशामुक्त हो, अक्षय परम पद पावता॥

(२)

जो आश में है तप्तता, ना आग में सो तप्तता।
शीतल निराशा है यथा, ना चन्द्र में सो शीतता॥
आशा मरी के वश हुए, जलते हुए हैं सर्वदा।
आशा जिन्होंने त्याग दी है शान्त रहते हैं सदा॥

(३)

जे आश के नर दास है, रहते सदा ही दीम हैं।
भजते निराशा धीर जो, वे पूज्य पंडित पीन हैं॥
करती निराशा पीन है, आशा बनाती दीन है।
फिर भी निराशा ना भजे, सो मूढ़ मति का हीन है॥

(४)

मरते रहे हैं देह ये, आशा मरी मरती नहीं।
जाता जहां पर जीव है आशा मरी जाती नहीं॥
आशा पिशाची जाय छुट, तो जीव है फिर ब्रह्म ही।
सद्ब्रह्म को संसार मांही आश है भटका रही॥

(५)

आशा जिन्होंने त्याग दी वे धीर नर ही धन्य हैं।
हैं पूज्य भी वे ही यहां, वे ही जगत् में मन्य हैं॥
जो बद्ध आशापाश में, उस मूढ़ को धिक्कार है।
सो भारवाही बैल सम ढोता सदा ही भार है॥

(६)

नर मूढ़ आशा में बंधा, सबसे नुचाता मांस है।
ज्यों श्वान रहता दौड़ता, बनता सभी का दास है॥
ज्ञानी निराशी धीर ना करता किसी की आश है।
ढोता नहीं है भार ना जाता किसी के पास है॥

(७)

भंडार होवे पूर्ण तो भी आशवाला निर्धनी।
कुछ भी नहीं हो पास में तो भी निराशी है धनी॥
पृथिवी बिछोना शुभ उड़ाना नित्य नीलाकाश है।
मैदान में रहता पड़ा, उस धीर को शाबाश है॥

(८)

निर्द्वन्द रहता सर्वदा, आ जाय सो खा लेय है।
नांही किसी से लेय कुछ, नांही किसी को देय है॥
पीयूष ब्रह्मानन्द पीकर आत्म में संतृप्त है।
सब विश्व मिथ्या देखता है आप में अनुरक्त है॥

(९)

यह दृश्य जो है दीखता, ना आप से सो अन्य है।
है दृश्य द्रष्टा आप ही, ना आपसे कुछ भिन्न है॥
जब अन्य कुछ है ही नहीं, तो आश फिर किसकी करे।
ऐसा विवेकी धन्य है, भवसिन्धु से निश्चय तरे॥

(१०)

जो सुख निराशा मांहि है, भोला! कहीं भी है नहीं।
आशा किसी की मत करे, मत आ कहीं मत जा कहीं॥
मत कुछ कभी रख पास रे, मत कुछ किसी से मांग रे।
संसार से मुख मोड़ ले, कर आप में अनुराग रे॥

कुछ भी नहीं तेरा यहां—

घर ईंट मिट्टी आदि का, तन मांस हड्डी आदि का।
है पांच भूतों का जगत्, या इन्द्र यम वरुणादिका॥
गुण तीन का विस्तार है, काया यहां माया वहां।
तेरा रहा क्या है बता, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(२)

लाया न था कुछ तू यहां, ले भी नहीं कुछ जायगा।
मुट्ठी बंधा आया यहां था, हाथ खोले जायगा॥
क्यों वस्तु अपनी मानकर, तू दुःख है पाता महा।
मत मान अपना कुछ सुखी रह, कुछ नहीं तेरा यहां॥

(३)

विश्वेश का हैं विश्व यह, कर सैर तू इस विश्व की।
मन इन्द्रियों को शान्त रख, रख याद अपने तत्त्व की॥
सुख रूप तेरा तत्त्व है ना दुःख किंचित् भी जहां।
भय रूप भव में भय सिवा, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(४)

साथी सगे सब हैं यहां के, देह के सम्बन्ध से।
तू देह ना, चिद्रूप ब्रह्मन्! मुक्त हैं भव बन्ध से॥
तू देह में आसक्त हो, आता यहां जाता वहां।
आसक्ति तज तू देह की, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(५)

भव बंध से यदि मुक्त मैं ही, ब्रह्म चेतन आप हूं।
है ब्रह्म सब श्रुति कह रहीं, तो सर्व ही मैं आप हूं॥
मैं आप ही जब सर्व हूँ, तो सर्व ही मेरा यहां।
यदि सर्व है तू आप तो भी, कुछ नहीं तेरा यहां॥

(६)

यदि सर्व मैं हूँ आप ही, तो सर्व कर्ता क्यों नहीं।
यदि सर्व कर्ता मैं हुआ, तो सर्व भोक्ता क्यों नहीं॥
हैं कर्ता कर्म भिन्न दो, तुम एक दोनों हो कहां।
कर्ता न तू भोक्ता न तू, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(७)

तू सर्व है तो कर्म कर्ता, सर्व तू होवे नहीं।
हों एक कर्ता कर्म दोनों, यह नहीं देखा कहीं॥
सर्वस्व तेरा छुप गया, जब तू बना करता यहां।
मैं और मेरा त्याग दो, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(८)

मैं देह हूँ, यह मानता, जब त्याग देगा हे सखे।
मैं सर्व हूं मैं ब्रह्म हूँ, तब जान लेगा हे सखे॥
सब जान, सब हो जायगा, तू हीं यहां तू ही वहां।
विश्वास कर विश्वास कर, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(९)

यह विश्व जो है दीखता, आभास अपना जान रे।
आभास कुछ देता नहीं, सब विश्व मिथ्या मान रे॥
होता वहां ही दुःख है, कुछ मानना होता जहां।
कुछ मान कर दुःखी न हो, कुछ भी नहीं तेरा यहां॥

(१०)

भोला ! किया ज्यों-ज्यों मनन, कुछ भी नहीं निकला यहां।
पाया कभी ना दूसरा, शिव एक है इकला यहां ॥
है एक ही शंकर जहां, दूजा वहां आवे कहां।
दे भ्रान्ति तज, शिव शान्त भज, कुछ भी नहीं तेरा यहां ॥

ब्रह्मदर्शन पाइये—

है ब्रह्म सबका आप ही, सर्वत्र ही भरपूर है।
मन में छुपा है आपके, ना बाल भर भी दूर है ॥
मन मांहि उसको खोजिये, बाहर कहीं मत जाइये।
कर लीजिये मन शुद्ध निर्मल ब्रह्म दर्शन पाइये ॥

(२)

सीधा सरल व्यवहार कीजे, छल कपट मत कीजिये।
मत लीजियेगा अन्य का अपना कभी मत दीजिये ॥
दुख भेद से, उसको चुकाने फिर न जग में आइये।
देवादि का कर्जा चुका कर ब्रह्म दर्शन पाइये ॥

(३)

कल के लिये जो कर्म है, सो कर्ज देना जानिये।
ले जन्म मिलते भोग जो, वे कर्ज लेना मानिये ॥
निज धर्म सुख से पालिये, नांही कभी फल चाहिये।
विश्वेश को अर्पण सभी कर, ब्रह्म दर्शन पाइये ॥

(४)

है विश्व यह विश्वेश का, कुछ भी नहीं है आपका।
सुत आदि अपने मान क्यों सिर भार धरते पाप का॥
स्वामीपने का भार शिर धर मत कुली बन जाइये।
सर्वस्व शिवको अर्घ दीजे ब्रह्म दर्शन पाइये॥

(५)

कुछ भी यहां करना ग्रहण, सो होय पर आधीन है।
कुछ भी नहीं करना ग्रहण सो होय नर स्वाधीन है॥
आशा सभी ही त्याग कर आशा रहित हो जाइये।
निष्काम आत्मा राम होकर ब्रह्म दर्शन पाइये॥

(६)

सब देखते हैं आप जब सर्वात्म शिव छुप जाय है।
कुछ भी नहीं यदि देखिये, शिव देखने में आय है॥
सब छोड़ कर शिव होयकर, शिव ही निरन्तर ध्याइये।
शिव दर्श ही है ब्रह्म दर्शन ब्रह्म दर्शन पाइये॥

(७)

जो ब्रह्म है दर्शन वही, ना ब्रह्म दर्शन से पृथक्।
दर्शन पृथक् ना ब्रह्म से, है मात्र कहने को पृथक्॥
है ब्रह्म सब श्रुति कह रही, विश्वास सम्यक् लाइये।
भांडा दुई का फोड़ दीजे ब्रह्म दर्शन पाइये॥

(८)

जो देखता हैं ब्रह्म है जो दीखता है ब्रह्म है।
है दृश्य द्रष्टा ब्रह्म तो, दर्शन न कैसे ब्रह्म है।
दर्शन न होता लुप्त है, जग ये भले सो जाइये।
ना लुप्त हो सो ब्रह्म ही है, ब्रह्म दर्शन पाइये॥

(९)

दर्शन न होता लुप्त है, यह ही बताने के लिये।
ईश्वर दिखाया विश्व निज दर्शन दिखाने के लिये॥
दीखे न दर्शन पूर्ण भी मल आंख का छुट वाइये।
आँखें अमल बनाइयेगा, ब्रह्म दर्शन पाइये॥

(१०)

कहते जिसे हैं ब्रह्म भोला! शान्त सच्चित् शुद्ध है।
आनन्द घन है एक रस सम शुद्ध सच्चित् बुद्ध है॥
अध्यास तज कर देह का अज्ञान दूर भगाइये।
अभ्यास कीजे ब्रह्म का ही ब्रह्म दर्शन पाइये॥

ज्ञान-गंग नहाइये—

काशी अयोध्या में गये, मथुरादि में तुम जा चुके।
यात्रा करी चहुँ धाम की, गंगादि में भी न्हा चुके॥
टांगें मती अब तोड़िये, विश्राम मित्रा! पाइये।
घर बैठ कर एकान्त में, अब ज्ञान गंग नहाइये॥

(२)

भागीरथी गंगा तुम्हें, बस स्वर्ग तक पहुंचायगी।
यह ज्ञान गंगा राज्य, निष्कंटक अचल दिलवायगी॥
सुखराज्य अक्षय इष्ट हो, तो शीघ्र मित्रो! आइये।
शुभ दिन घड़ी पल है वही, जब ज्ञान गंग नहाइये॥

(३)

व्यासादि पण्डे दक्षिणा, पैसा न पाई लेत हैं।
मल-मल के नहवावें तुम्हें, निर्मल परम कर देत है॥
नहिं डूबने का भय यहाँ, निःशङ्क हो घुस जाइये।
मकरादि भी नहि काटते, हैं ज्ञान-गंग नहाइये॥

(४)

यह ज्ञान गंगा है कहां? यदि चाहते हो जानना।
सर्वत्र ही है वह रही, यद्यपि तुम्हें है भान ना॥
शुचि-सन्त कहते हरि कथायें नित्य ही तँह जाइये।
बहती हुई ही पाइये, झट ज्ञान-गंग नहाइये॥

(५)

विक्षिप्त-मैला मन सदा संसार में भटका रहा।
हो जात है जब शुद्ध मन, तब तीर्थ ही जाता कहा॥
मन-शुद्ध उत्तम तीर्थ है, संशय न इसमें लाइये।
चंगा करो मन मित्र! अपना, ज्ञान गंग नहाइये॥

(६)

सच्छास्त्र पढ़िये चित्त दे, सत्संग में मन दीजिये।
धीरे भले चिल्लाय के, शिव-नाम का जप कीजिये॥
कीर्तन करो हरिका सदा, शिव को निरन्तर गाइये।
तल्लीन होकर ब्रह्म मँह, नित ज्ञान गंग नहाइये॥

(७)

परिपूर्ण है, शिव एक ही, शिव के सिवा ना अन्य है।
सो है सभी में आप अपना, आप से ना भिन्न है॥
भय मत किसी को दीजिये, भय मत किसी से खाइये।
निर्द्वन्द अरु निश्चिन्त होकर, ज्ञान-गंग नहाइये।

(८)

डुबकी लगाते ही तुरत, मन मैल सब छुट जायगा॥
शम शान्त होगा शुद्ध मन, शिव तत्त्व में डट जायगा।
भोला ! कहे श्रुति सन्त भी, भ्रम भेद दूर हटाइये॥
सुन लीजिये, सुख पाइये, नित ज्ञान गंग नहाइये।

कामादि की दुर्दशा—

हे काम ! तेरे कर्म में क्या पड़ गया कुछ भंग है।
ना पूर्व का सा रूप है, ना पूर्व का सा रंग है॥
क्या लू लगी, पाला पड़ा, लकवा तुझे है लग गया।
मुख पर उदासी छा रही, सौन्दर्य सारा भग गया॥

(२)

हे क्रोध ! कंचन तप्त-सा चमके सदा तव भाल था।
सबको जलाने के लिये, तू आग अथवा काल था॥
अब तेज तुझमें है नहीं, ज्यों बर्फ है तू गल रहा।
कैसे जलावे अन्य को, जब आप ही तू जल रहा॥

(३)

हे लोभ ! तेरी थोंद जो, भूगोल से भी थी बड़ी।
सो पीठ से है लग रही, यह क्या विपति तुझ पर पड़ी॥
तिहुँ लोक के ऐश्वर्य से, तू तृप्त होता था नहीं।
तब था उछलता रात दिन, आता न जाता अब कहीं॥

(४)

तीनों बली तुम विश्व विजयी, जीत सबको लेत थे।
जो मल्ल जुटते आयके, पटकें उन्हें तुम देत थे॥
अब है न तुममें शूरता, उत्साह भी ना लेश है।
निर्बल परम ही हो गये, ना शक्ति किञ्चित् शेष है॥

(५)

बिनु पक्ष का पक्षी यथा हो, सर्प ज्यों बिनु पूंछ का।
ज्यों कृष्ण का बांधा हुआ, रुक्मी अबल बिनु मूंछ का॥
त्योंही हुए बल-हीन तुम, सब भाँति से असमर्थ हो।
यह दुर्दशा कैसे हुई, निज दुःख का कारण कहो॥

(६)

हा ! हा ! बतावें क्या तुम्हें, प्रारब्ध (१) औंधी हो गई।
(२) माता हमारी पूर्वकी, है मर गई या खो गई।
दिन-भर खिलाती थी पिलाती, लाड़ करती थी सदा ॥
देकर मलाई दूध-घी वह पालती थी सर्वदा ॥

(७)

करलो (३) पिताने है (४) नयी, पत्नी है यद्यपि सुन्दरी।
तो भी हमें है दीखती, ज्यों मृत्यु या पैनी छुरी ॥
खाने न पीने देय है, ना खेलने ही देत है।
देखे हमें जब खेलते कर लाल आखें लेत है॥

(८)

खाना जभी हम मांगते, तो दण्ड लेकर दौड़ती।
रोने लगें तो क्रोध कर, माथा हमारा फोड़ती ॥
आहार प्राणाधार है, मिलता नहीं आहार है।
भोजन बिना तनमें हमारे, ना रहा कुछ सार है ॥

(९)

मेहमान हैं दिन चारके, घर छोड़ बाहर जायंगे।

---

(१) विपरीत—उलटी (२) अविद्यारूपी कामादिकों की माता (३) मनरूपी पिता (४) ब्रह्मविद्यारूपी नयी पत्नी, कामादिकों की सौतेली माता, विवेक वैराग्यादिकों की निजी माता।

काला करेंगे मुख न घरमें, लौट कर फिर आंयगे ॥
सत्कार ना होवे जहां, रहना वहां वेकार है।
लातें सहें गाली सुनें, ऐसे हमें धिक्कार है ॥

(१०)

जब तक अविद्यायुक्त है, कामादि बल दिखलात हैं।
जब जीव विद्यासक्त हो, कामादि खल भगजात हैं॥
भोला! अविद्यासक्त नर, मरते रहें जन्मा करें।
जो धीर विद्यायुक्त हैं, भवसिन्धु से तारें तरें॥

क्या सत् तथा क्या है असत् ?

यह दृश्य तब तक देखता, जब तक रहूँ हूँ जागता!
यह दृश्य होता लापता, जब नींद में पड़ सोवता ॥
थोड़ा हटा जहँ नींद से, तब स्वप्न नाना देखता।
क्या सत् तथा क्या है असत्, कुछ भी नहीं लगता पता॥

(२)

जो आज है सो कल्ल ना, जो कल्ल सो परसों नहीं।
दिन चार की है चाँदनी, फिर है अंधेरी रात ही॥
जो दिन चला सो चल दिया, ना लौटकर फिर आय है।
क्या सत् तथा क्या है असत्, कहते नहीं बन आय है॥

(३)

कुछ काल में बालकपने को खा जवानी जाय है।

खाती जवानी को जरा, फिर मृत्यु उसको खाय है ॥
जो मृत्यु का खाया हुआ, ना दृष्टि में फिर आय है।
क्या सत् तथा क्या है असत्, निर्णय नहीं हो पाय है ॥

(४)

जो मर गया सो मर गया, फिर मुख नहीं दिखलाय है।
अब कौन वस्तो में रहे है सूचना ना आय है ॥
कुछ काल तक है देह सत्, पीछे असत् हो जाय है।
क्या सत् तथा क्या है असत्, नाहीं समझ में आय है ॥

(५)

नारी सुशीला मिल गयी है, पुत्र भी दो चार हैं।
एकत्र धन बहु कर लिया, होते कई व्यापार हैं ॥
सुख भोग का आया समय, सब छोड़ लाला चल दिये।
क्या सत् तथा क्या है असत् दिन चार रहने के लिये ॥

(६)

जल की नहीं है छींट भी, मृगजल दिखायी देय है।
मृग मूढ़ पीने जाय दौड़ा जान अपनी देय है ॥
जो दीखता सो सत्य है, इसमें न कोई मान है।
क्या सत् तथा क्या असत्, इसकी कठिन पहचान है ॥

(७)

जिस काल में जो दीखता, उस काल में सो होय सत्।

जब जो नहीं है दीखता, उस काल में सो है असत् ॥
जो हो कभी ना हो कभी, सच्चा न सो कहलाय है ।
क्या सत् तथा क्या है असत्, यह जान विरला पाय है ॥

(८)

यह दृश्य नाहीं सत्य, तो भी दृश्य-द्रष्टा सत्य है ।
निर्लेप उसकी दृष्टि है द्रष्टा इसी से नित्य है ॥
द्रष्टा लिया यदि जान, तब तो चित्त उसमें दीजिये ।
क्या सत् तथा क्या है असत्, संशय कभी मत कीजिये ॥

(९)

चिद् ब्रह्म केवल सत्य है, ना विश्व उससे भिन्न है ।
ज्यों सिंधु सब जलमात्र है, जलसे नहीं कुछ अन्य है ॥
चित् ब्रह्म में अभ्यास से, जब लीनमन हो जायगा ।
क्या सत् तथा क्या है असत्, यह मर्म सब खुल जायगा ॥

(१०)

है ब्रह्म सत्, है ईश सत्, है जीव सत्, है सत्त जगत् ।
जब एक अद्वय तत्त्व है, तब सर्व ही है मात्र सत् ॥
अद्वय लखाने के लिये, कल्पे गये हैं सत् असत् ।
भोला ! जगो जब स्वप्न से, पाया अखंडित आप सत ॥

कैसे भला ! सुख पा सके ?

दुर्ग्रन्थ पढ़ता रात दिन, सद्ग्रन्थ नाहीं एक क्षण।
गप शप्प में लग जाय मन, हरि गान में लगता न मन॥
मीठा सलौना भावता, रूखा नहीं है खा सके।
वश में नहीं हैं इन्द्रियां, कैसे भला ? सुख पा सके॥

(२)

संसारियों में रम रहा, सत्संग में ना जाय है।
प्यारे लगे हैं भोग नाहीं योग लेश सुहाय है॥
शीतोष्ण मानामान किंचित् भी सहा ना जा सके।
ना कष्ट थोड़ा सह सके, कैसे भला सुख पा सके ?॥

(३)

ना जानता है सत असत, आत्मा अनात्मा भी नहीं।
जाने नहीं है शुचि अशुचि, समता विषमता भी नहीं॥
कुल आदि का अभिमान भी त्यागा न जिससे जा सके।
देहाभिमानी मूढ़ सो, कैसे भला सुख पा सके ?॥

(४)

ना राग छोड़ा जाय है, ना द्वेष छोड़ा जाय है।
कारण विना ही क्रोध जिसको शीघ्र ही आ जाय है॥
यह है भला, यह है बुरा, मनसे न जिसके जा सके।
सो भेद दर्शी तामसी, कैसे भला ? सुख पा सके॥

(५)

लाखों भरी मन कामनायें लोक या परलोक की।
युवती यहां की चाहता देवांगना परलोक को॥
अब यह करूं अब वह करूं चिन्ता न क्षण भी जासके।
लाखों जिसे चिन्ता लगीं, कैसे भला ? सुख पा सके॥

(६)

सर्वत्र जल है भर रहा, मछली रहे जल मांहि है।
जब तक न उलटी होय है, जल पी सके सो नांहि है॥
सर्वज्ञ सुख परिपूर्ण है, विषयी देख तक भी ना सके।
संसार से मोड़े न मन, कैसे भला ? सुख पा सके॥

(७)

सुख सिंधु तट तक पूर्ण है सुख चाह इसमें आड़ है।
सुख चाहने है ढांप दीन्हा, उच्च शान्ति पहाड़ है॥
छोड़े धनादिक चाह, उसकी दृष्टि में सुख आ सके।
जो चाह नाहीं तज सके. कैसे भला सुख पा सके ?॥

(८)

धन धाम पामर त्यागते, इच्छा न उनकी त्यागते।
मठ के बनाने के लिये दर दर फिरें धन मांगते॥
जब तक न हो निर्लोभ तब तक दीनता ना जा सके।
त्यागे नहीं जो दीनता, कैसे भला ? सुख पा सके॥

(९)

जाड़ा सहे गर्मी सहे, कपड़ा न रखता पास है।
सत्कार की सम्मान की, मन मांहि रखता आश है॥
आशा न जब तक जायगी, ना दुःख तब तक जा सके।
जो दास होवे आश का, कैसे भला सुख पा सके?॥

(१०)

सुख शान्ति यदि है इष्ट तो, संसार से मुख मोड़ रे।
होकर निराशा सर्व से शिव शान्त में मन जोड़ रे॥
दे काट आशा पाश सो ही निकल भव से जा सके।
भव से न निकले जब तलक भोला नहीं सुख पा सके?॥

भीतर सदा रह शान्त रे।

इस देह से तेरा कभी किंचित नहीं संबंध है।
चिद्रूप तुझमें मोक्ष नाहीं ना कभी भी बंध है॥
मन देह में आसक्त हो, कर्तृत्व में मन भ्रान्त रे।
कर कर्म बाहर या न कर, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(२)

यह दृश्य बाहर दीखता, सो दृश्य तव मन मांहि है।
यदि दृश्य मन में हो न तो बाहर कहीं भी नाहिं है॥
मन शुद्ध कर स्वाधीन कर, जब तक न हो देहान्त रे॥
कर कर्म पग से हाथ से, भीतर सदा रह शान्त रे।

(३)

कर्ता करण अरु कर्म तीनों देह के ये धर्म हैं।
ना ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय तू, सब चित्र के ये धर्म हैं॥
निस्संग आत्मा है सदा; यह है अटल सिद्धान्त रे।
ना लेप तुझ में कर्म का, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(४)

यदि होय भीतर खोट तो, सोना कलंकित होय है।
बाहर लगी हो कीच ना कहता कलंकित कोय है॥
घर में सदा कर बास या कर बास बन एकान्त रे।
मत क्षोभ मन में ला कभी, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(५)

जो होय काई से ढका, सो नीर पावन होय है।
रज आदि से हो लिप्त ऊपर सो अपावन होय है॥
देहेन्द्रियों के कर्म से देही न होता क्रान्त रे।
रो पीट ले बाहर भले, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(६)

यदि दृश्य सच्चा मानता, सच्चा न होता नष्ट है!
यदि मानता है दृश्य मिथ्या तो तुझे क्या कष्ट है॥
निर्वासना मन होय तो, हो जाय है दुःखान्त रे।
सुख होय अथवा दुख हो, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(७)

कर्मेन्द्रियां तो रोकता है त्यागता संकल्प ना।
यह है भला यह है बुरा, करता रहे है कल्पना॥
उस मूढ़ के संसार का होता कभी ना अन्त रे।
कर्मेन्द्रियों से कर्म कर, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(८)

मन शुद्धि देता मोक्ष है; मन मलिन से है बंध रे।
ना मोक्ष से ना बंध से, है आत्म का संबंध रे॥
जो प्राप्त हो सो भोग ले मत भोग में हो सक्त रे।
निःशंक हो निज धर्म कर, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(९)

गुण तीन का मन है बना, गुण तीन का संसार है।
गुण तीन का है देह य:, करता यही व्यापार है।
आत्मा अचल निस्संग ऐसा कह रहा वेदान्त रे।
यदि आत्म अनुभव इष्ट है, भीतर सदा रह शान्त रे॥

(१०)

आत्मा छुपा है बुद्धि में बाहर मिलेगा ना कभी।
कर खोज उसकी बुद्धि में भोला मिले आत्मा अभी॥
इतिहास आदिक कह रहे, कहते यही सब सन्त रे।
बाहर रहे या मत रहे भीतर सदा रह शान्त रे॥

परतंत्र कौन है ?

परतंत्र सो ही मूढ़ है, वश में न जिसके इन्द्रियां।
अपनी तरफ है खींचती, ज्यों एक की वहु पत्नियां॥
कैसे सुखी सो होय जो, दश इन्द्रियों का दास है।
नर मूढ भोगासक्त का, निचश्य हि होता नाश है॥

(२)

परतंत्र सो ही मूढ है जो क्रोध के वश होय है।
बहु काल का तप एक दिन में व्यर्थ देता खोय है॥
जो मूढ़ वश है क्रोध के, निजतंत्र नांही हो सके।
जिसके लगी घर आग हो, सुख से कहां सो सोसके॥

(३)

परतंत्र सो ही मूढ़ है जो लोभ के आधीन है।
हो जाय कोट्याधीश भी तो भी सदा ही दीन है॥
निजतंत्र होना चाहता, पर लोभ नांही त्यागता।
नभ वृक्ष से सो मूढ़ नर है, पुष्प लेना मांगता॥

(४)

परतंत्र है सो मूढ़ जिसका देह में अध्यास है।
छोटा बनाता आत्म को, सर्वत्र जिसका वास है॥
छोटा बना दे बृहत् को, सो क्यों नहीं परतंत्र हो।
मैला बताने आपको, सो क्यों नहीं अपवित्र हो॥

(५)

परतंत्र है सो मूढ़ जो ममता करे है गेह में।
करता सदा ही स्नेह अति अपने पराये देह में॥
भर देह माने आपको, स्वाधीन कैसे हो सके।
ना आधि को ना व्याधि को, ना मृत्यु को है खो सके॥

(६)

परतंत्र सो ही मूढ़ जो भेद शिव में देखता।
निजतंत्र है सो धीर जो शिव एक सब में देखता॥
शिव शुद्ध सबमें एक है पावन परम निजतंत्र है।
शिव आत्म जो ना जानता, निजतंत्र भी परतंत्र है॥

(७)

परतंत्र सब ही जीव हैं, निजतंत्र केवल ईश है।
होता वही निजतंत्र जो भजता सदा जगदीश है॥
निजतंत्र होना चाहता, जीवत्व नांही छोड़ता।
सो मूढ़ फल टूटा हुआ, फिर वृक्ष में है जोड़ता॥

(८)

परतंत्र सो है मूढ़ जो सत्संग में जाता नहीं।
मैं कौन हूँ क्या है जगत्, यह ज्ञान है पाता नहीं॥
क्या जीव है क्या ईश है, वह भी नहीं जो जानता।
निजतंत्र कैसे होय सो, जो भेद सच्चा मानता॥

(९)

परतंत्र सो है मूढ़ जो दुर्ग्रन्थ पढ़ता नित्य है।
सद्ग्रन्थ के भी पठन में देता नहीं जो चित्त है॥
सज्जन तथा सच्छास्त्र से जो धीर करता नेह है।
जो जान जाता है तुरंत परतंत्र सबका देह है॥

(१०)

परतंत्र केवल देह है, देही सदा निजतंत्र है।
जो देह देही जान ले, होता न सो परतंत्र है॥
चिन्मात्र देही भज सदा, जड़ देह भोला त्याग रे।
निजतंत्र हो परतंत्रता भव, जेल से उठ भाग रे॥

मरता कौन है ?

मरता वही जो जन्मता, यह देह मरता जन्मता।
देही सदा ही है अमर, मरता नहीं; ना जन्मता॥
मरता नहीं जब जीव क्यों, रोना रुलाना चाहिये।
मिलता नया शुभ देह है, उत्सव मनाना चाहिये॥

(२)

मरता वही है मूढ़ जो, करता निरन्तर पाप है।
मर कर वही परलोक में, पाता घना संताप है॥
यदि भय लगे है मृत्यु से, ना पाप करना चाहिये।
हिंसा न करनी चाहिये, शिव ध्यान धरना चाहिये॥

(३)

मरता वही है मूढ़ जो 'मैं देह हूँ' यह मानता।
देही अलग हूँ देह से ऐसा नहीं है जानता॥
नर मूढ़ ऐसा देह मरने पर स्वयं मर जाय है।
होता नरक का कीट है फिर फिर मरे पछताय है॥

(४)

मरता वही है मूढ़ नर जो भोग में आसक्त है।
शिव शान्त सम सर्वात्म में होता नहीं अनुरक्त है॥
जड़ भोग में आसक्त नर ना ज्ञान सम्यक् पाय है।
बिनु ज्ञान सम्यक् अमर भी मरता रहे भय पाय है॥

(५)

दिन चार का मेहमान है ऐसा नहीं है जानता॥
मरता वही है मूढ़ जो सुत दार सच्चे मानता।
सुत आदि में ममता करे सो देह फिर से पाय है॥
जो देह तज भवसिन्धु में गोते निरन्तर खाय है॥

(६)

मरता वही है मूढ़ जो हरि का नहीं करता भजन।
करता भजन है नारि का धन धाम का अथवा भजन॥
जो जो भजे पावे वही, विश्वेश का है यह नियम।
कालेश जो नांही भजे, क्यों फिर उसे ना खाय यम॥

(७)

मरता वही है मूढ़ जो जीवन मरण ना जानता।
जीवन मरण है जानता अरु मरण जीवन मानता।
जीवत्व कहते हैं मरण, ब्रह्मत्व जीवन सुज्ञ जन।
सुनता नहीं है मूढ़ जो सो क्यों न पावे फिर मरण॥

(८)

मरता वही है मूढ़ जो सत्संग में आता नहीं।
पढ़ लेय या सुन लेय तो विश्वास है करता नहीं॥
भोगी जनों की स्तुति कथायें भोग में ललचाय है।
नांही अमर सो हो सके नांही कभी सुख पाय है॥

(९)

मरता वही है मूढ़ जो सत्संग में आता नहीं।
ज्ञानी अमानी निस्पृही के पास है जाता नहीं॥
समचित्त संतों के बिना ना मर्म पाया जाय है।
कैवल्य पद मिलता नहीं ना मृत्यु जीता जाय है॥

(१०)

मरता वही है मूढ़ जो मन इन्द्रियां ना वश करे।
मन इन्द्रियां वश जो करे संसार से निश्चय तरे॥
मरना नहीं यदि इष्ट तो अविवेक भोला! छोड़ दे।
संसार से मुख मोड़ ले मन बुद्धि शिव में जोड़ दे॥

अच्छा निकाला ढंग है !

सब जीव मुर्दे से पड़े थे, कुछ नहीं थे जानते।
सुख दुःख नांही अन्य का, ना आप के थे पहिचानते॥
शिव रच दिया यह विश्व जहँ होता सदा ही जंग है।
मुर्दे जिलाने के लिये, अच्छा निकाला ढंग है॥

(२)

बनते स्वयं शिव हैं विधाता, विश्व है उप जावते।
हो विष्णु शिव जग पालते, हो रुद्र सब खा जावते॥
गुण तीन को सबको पिलाई, शंभु गाढ़ी भंग है।
लाला दिखाते आपको, अच्छा निकाला ढंग है॥

(३)

गुण तीन में फंस मूढ़ पाता दुःख निशिदिन रोवता।
नरधीर शिव का ध्यान धरना नींद सुख की सोवता॥
शब्दादि तज शिव के भजन से दुःख होता भंग है।
सब दुःख हरने के लिये, अच्छा निकाला ढंग है॥

(४)

नारी पुरुष संयोग से सुख तुच्छ शिव दिखला रहे।
होता विरह से अन्त दारुण दुःख यह सिखला रहे॥
सुख अल्प में ना अन्य में, सुख पूर्ण आप असंग है।
सुख नित्य देने के लिये अच्छा निकाला ढंग है॥

(५)

संकल्प से मन है बना, मन का रचा संसार है।
यदि मन न होता विश्व मांही, ब्रह्म ही सुख सार है॥
सुविचार करते ही तुरत, मन होय पग से पंग है।

संकल्प तजने के लिये अच्छा निकाला ढंग है॥

(६)

होता सगुण ना ब्रह्म निर्गुण तत्त्व कौन बनावता।
बिनु तत्त्व के जाने हुए नर मुक्ति कैसे पावता॥
बिनु अंग भी शिव शक्ति लेकर धार लीन्हा अंग है।
निजधाम देने के लिये, अच्छा निकाला ढंग है॥

(७)

होता नहीं यदि काम वैरी क्रोध कैसे आवता।
आता नहीं यदि क्रोध तो यह लाभ कैसे जावता॥
जाते चले जब काम आदिक होय मन निस्संग है।
मन शुद्ध करने के लिये, अच्छा निकाला ढंग है॥

(८)

जो संग में है दोष वे कोई नहीं यदि जानता।
निस्संग केवल बोध नर किस भांति से पहिचानता॥
निस्संगता से शंभु दुर्जय भस्म कीन्हा अनंग है।
समशान्त होने के लिये अच्छा निकाला ढंग है॥

(९)

यदि हो शरण ही ब्रह्म तो भी बात कर सकते न हम।
जब सूर्य पर या चन्द्र पर भी पैर धर सकते न हम॥
अवतार लेकर सगुण रचता वेद अरु वेदांग है।
नर को बनाते ब्रह्म यह अच्छा निकाला ढंग है।

(१०)

नर देह सुर दुर्लभ्य भोला! क्यों गँवाता भोग में।
ये भोग अक्षय रोग हैं, मन दे लगा शिव योग में॥

सच्छास्त्र सद्गुरु मिल गये हैं, मिल गया सत्संग है।
गिरिजेश भज जिसने बहुत अच्छा निकाला ढंग है॥

कोई किसी को क्या कहे ?

उपदेश देते हैं सभी, उपदेश लेता एक ना।
उपदेश लेवे लेश भी, तो लेश पावे क्लेश ना॥
उपदेश लेते आप हैं, उपदेश देता आप है।
है शिष्य वह अथवा गुरु, कोई किसी को क्या कहै॥

(२)

वातादि तीनों से बने हैं, देह हड्डी मांस के।
आते कहीं जाते कहीं; चल फिर रहे वश सांस के॥
परतंत्र है सब भूख के, कोई नहीं निज तन्त्र है।
यह दास है, यह खास है, कोई किसी को क्या कहै॥

(३)

कल सेठ माला माल था, जो आज है सो कंगाल है।
कंगाल था जो कल्ल सो ही आज मालामाल है॥
हो सेठ या कंगाल इक दिन काल सबको खाय है।
है सेठ यह कंगाल यह, कोई किसी को क्या कहै॥

(४)

राजा युधिष्ठिर ने कभी भी झूंठ बोला था नहीं।
बहु कष्ट पाये नगर बन में, सत्य बोला हर कहीं॥
कुंजर मरा या नर मरा, नांही हुई पहिचान है।
यह सत्य ही है बोलता, कोई किसी को क्या कहे॥

(५)

जो वाक्य दुर्योधन कहे, वे वाक्य सब हैं ज्ञान के।

बर्ताव इसके देखिये, सो पूर्ण है अभिमान के ॥
मन राखता है अन्य कुछ. बाहर दिखाता अन्य है ।
यह है बुरा यह है भला, कोई किसी को क्या कहे ॥

(७)

अक्रूर भगवद्भक्त थे, निर्लोभ थे निष्काम थे ।
शास्त्रज्ञ थे, धर्मज्ञ थे, नीतिज्ञ शुभ गुण धाम थे ॥
मणि लोभ से हिंसा कराई, किन्ह हरि से वैर है ।
हरिभक्त है धन भवन या, कोई किसी का क्या कहै ॥

(८)

धन वस्त्र भूषण लूटता, वाल्मीकि था डाकू महा ।
लेता पथिक की जान तक, तब और क्या लेना रहा ॥
सत्संग से सर्वज्ञ हो सो ही हुआ कवि मुख्य है ।
है कौन अब, हो कौन फिर, कोई किसी को क्या कहै ॥

(९)

संसार सच्चा दीखता है सत्य ही सब जानते ।
ना दीखता है ब्रह्म मिथ्या, आप सब ही मानते ॥
जो पूर्व में था जगत् पीछे ब्रह्म सो हो जाय है ।
क्या सत्य है, क्या है मृषा, कोई किसी को क्या कहै ॥

(१०)

जो एक सब में देखता, सो एक ही हो जाय है ।
ना स्वप्न में भी दूसरा उसको कहीं भी पाय है ॥
वाणी नहीं जहं जा सके, मन जाय गूंगा होय है ।
भोला ! वहां एकान्त में, कोई किसी को क्या कहै ॥

श्री स्वामी भोले बाबा कृत

५१ उपनिषदों की

तथा

ब्रह्मसूत्र की भाषा आदि ग्रन्थों के

मिलने का पताः—

मैनेजर

वेदान्त केशरी

लाल-घाट

बेलनगंज आगरा

'विश्वनाथ'

(उच्चकोटि का धार्मिक एवं दार्शनिक मासिक पत्र)

भारतवर्ष के प्रसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं तथा प्रकाण्ड विद्वानों एवं पंडितों के सारगंभित लेख और धार्मिक सामग्री से परिपूर्ण काशी का सर्वोत्तम पत्र—

धर्माङ्क नाम का विशेषाङ्क इस वर्ष निकल रहा है

वार्षिक मूल्य ३)

संचालक
पं० चन्द्रभानु शर्मा
अपारनाथ मठ काशी

मुद्रक—ब्रह्मचारी रुद्रचैतन्य
काशी विश्वनाथ प्रेस, ढुण्ढिराजगणेश बनारस सिटी।